इकाई 1: भाषा का उद्गम और विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

भाषा ही वह दिव्य ज्योति है, जो सम्पूर्ण संसार को एकसूत्र में बाँधने की शक्ति रखती है। जो परस्पर एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करती है, भाषा रूपी दिव्य ज्योति से अज्ञान रूपी अंधकार को दूर किया जाता है। भाषा के विषय में कहा गया है कि भाषा सतत् गत्वर एवं प्रवाहमान है।

भाषा क्या है ? आंखिर मनुष्य को इसकी आवश्यकता क्यों हुई?प्रस्तुत इकाई में भिन्न-भिन्न विद्वानों के द्वारा भाषा की परिभाषाओं व उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही साथ भाषा की उत्पत्ति व उसके विकास को भी आप समझ सकेंगे।

भाषा की उत्पत्ति को लेकर तो विद्वानों में कई मतभेद है। कुछ विद्वानों ने तो भाषा की उत्पत्ति के सिद्धान्त को ही भाषा विज्ञान के क्षेत्र से बाहर माना है। इस इकाई में आप भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन विविध मतों के आधार पर कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप भाषा विज्ञान से सम्बन्धित विषय भाषा का अध्ययन करेंगे-

- भाषा के अर्थ को समझ सकेंगे।
- भाषा की परिभाषा से परिचित होंगे।
- भाषा की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- भाषा की उत्पत्ति व उसके विकास के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 भाषा का अर्थ

भाषा शब्द संस्कृत के भाष् धातु से बना है जिसका तात्पर्य स्पष्ट वाणी, मनुष्य की वाणी, बोलना या कहना है। भाषा का अर्थ सिर्फ बोलने से नहीं है बल्कि जो मनुष्य बोलता है उसके एक खास अर्थ से है। भाषा शब्द का प्रयोग पशु- पक्षियों की बोली के लिए भी होता है। इंगित को भी भाषा कहा जाता है, सिर, आँख, हाथ आदि को हिलाने आदि से भी कई अर्थों की अभिव्यक्ति की जाती है जिस प्रकार सिर नीचे करने हाँ और सिर को दाँये- बाँये हिलाने आदि से नहीं अर्थ प्रकट किया जाता है। देखा जाय तो अंगों के द्वारा किया गया अभिनय इंगित भाषा कहलाता है।

सामान्य रूप से देखा जाय तो सभी प्राणी ध्वनि संकेतों में ही बोलते हैं। केवल मनुष्य के मुख से

निकली ध्वनि जिसका एक खास अर्थ होता है,यही भाषा है, अध्ययन का विषय भी वही है। मनुष्य

आपस में जो विचार विमर्श करते हैं उसका साधन केवल भाषा ही है, सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम केवल भाषा ही है । देखा जाय तो संकुचित अर्थ में भाषा का अर्थ सिर्फ मनुष्य की भाषा से है। पाणिनीय शिक्षा के अनुसार मौखिक भाषा उत्कृष्ट व लिखित भाषा निकृष्ट के अन्तर्गत आती है ।

भाषा विज्ञान में जिस भाषा को ग्रहण किया गया है । वह केवल मानवीय भाषा ही है ।

1.4 भाषा की परिभाषा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । सामाजिक प्राणी होने के कारण वह आपस में अपने विचार व्यक्त करने पड़ते हैं, वह कभी शब्दों या वाक्यों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करता है तो कभी वह संकेतों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करता है। वक्ता जो बोलता और श्रोता जो सुनकर भावों को ग्रहण करता है वही भाषा है । सामान्य रूप से देखा जाय तो भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं । जो बोला व सुना जाता है उसे भाषा कहते हैं।

भाषा विज्ञान के अन्तर्गत केवल स्पष्ट रूप से बोलने वाले मनुष्यों की वाणी ही आती है। भाषा शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से अपने व्यापक अर्थ में किया जाता है। इसमें बोलने वाला भी भाषा बोलता है, सुनने वाला भी भाषा सुनता है और बोध भी भाषा रूप में होता है । देखा जाय तो एकान्त में रहने वाला व्यक्ति भी किसी भाषा का प्रयोग करता है, और एक सुविख्यात व्यक्ति भी किसी विशेष भाषा का प्रयोग करता है । विद्वानों ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है-

पाणिनी के अष्टाध्यायी के महाभाष्य में महर्षि पतंजलि ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है-

'व्यक्तां वचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।'

यहां वर्णात्मक वाणी को ही भाषा कहा गया है।

डॉ0 मंगलदेव शास्त्री के अनुसार- भाषा मनुष्यों की चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं। मंगलदेव शास्त्री की परिभाषा में अर्थयुक्तता एवं प्रतीकात्मकता के निर्देश का अभाव है ।

डॉ0बाबूराम सक्सेना के अनुसार- जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है

उसकी समष्टि को भाषा कहते हैं। डॉ0 बाबूराम सक्सेना ने उच्चारण अवयवों का उल्लेख नहीं किया है।

डॉ0 श्यामसुन्दर के अनुसार - मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार- ''भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।''

मैक्समूलर के अनुसार-भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।

प्लेटो के अनुसार-''विचार आत्मा की मूक बातचीत है पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।''

स्वीट के अनुसार-ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।

संघटनात्मक रूप से देखा जाय तो भाषा-शास्त्रियों ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है-''भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।'' यदि हम इस परिभाषा को देखें तो इसमें चार बातों पर ध्यान दिया गया है।

1- **भाषा एक पद्धति है**- भाषा एक सुव्यवस्थित योजना है। जिसके अन्तर्गत कर्ता, कर्म, क्रिया आदि व्यवस्थित रूप से आ सकते हैं, इसमें वक्ता जो कुछ भी कहता है श्रोता वही समझता है। इसमें पद रचना के कुछ वाक्य रचना के कुछ नियम हैं, जिनका पालन करना अनिवार्य है। तृतीया एकवचन में न् का ण् किन शब्दों में होगा, किन शब्दों में नहीं होगा, और किन शब्दों में तृतीया के एकवचन में आ लगेगा और कहां पर ना लगेगा, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ विश्लेषण किया जाता है।

2- **भाषा संकेतात्मक है**- किसी भी भाषा में जो ध्वनियां आती हैं, उनका किसी वस्तु या कार्य से सम्बन्ध होता है कोई भी ध्वनि किसी भाषा में किसी एक वस्तु का बोध कराती है। केवल हमें इस तथ्य पर ध्यान देना है कि भाषा की ध्वनियां केवल संकेतात्मक हैं।

3- **भाषा वाचिक ध्वनि संकेत है-** मानव अपनी वागिन्द्रिय के द्वारा जिन संकेतों का उच्चारण

करता है, केवल वे ही भाषा के अन्तर्गत आते हैं, वाचिक ध्वनि संकेत सूक्ष्म से सूक्ष्म, मूर्त और अमूर्त, निर्वचनीय और अनिर्वचनीय, दृश्य-अदृश्य सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से समर्थ है, देखा जाय तो ध्वनियों की एक विशिष्ट प्रकिया है, जिसका सूक्ष्म विश्लेषण सम्भव है।

4- भाषा यादृच्छिक संकेत है- यादृच्छिक का अर्थ है, जैसी इच्छा या इच्छा के अनुसार भिन्न-भिन्न भाषाओं के अध्ययन से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि किसी भी भाषा में जिन ध्वनि संकेतों का उपयोग किया जाता है, वे पूर्ण रूप से यादृच्छिक (ऐच्छक) है।

यदि हम सामान्य रूप से बालक की भाषा-शिक्षण को ध्यान में रखकर विचार करें तो हमें यह ज्ञात होता है कि बालक अपने माता-पिता व सम्बन्धियों के द्वारा कहे गये ध्वनि संकेतों का अनुकरण करता है, वह इसका विवेचन नहीं करता है कि गाय को गाय और घोड़े को घोड़ा क्यों कहते हैं।

1.5 भाषा की विशेषताएं और प्रकृति

इससे पूर्व के पृष्ठों में आप भाषा की परिभाषाओं से परिचित हुए,इस अध्याय में आप

भाषा की कुछ विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। जो सामान्य रूप से देखा जाय तो विश्व की सभी भाषाओं में प्राप्त होती हैं।

1-भाषा अर्जित सम्पत्ति-भाषा मनुष्य को जन्म से नहीं आती है। समाज या वातावरण से मनुष्य भाषा सीखता है।योग्यता के अनुसार ही मनुष्य बचपन में भाषा को अर्जित करता है।जिस प्रकार भेड़िये के साथ रहने वाला बच्चा वातावरण के अभाव के कारण मनुष्य की भाषा नहीं सीख पाता वहीं दूसरी ओर वह भेड़िये की भाषा को सीखता है। भाषा सीखी व अर्जित की जाती है, इसलिए यह अर्जित सम्पत्ति है।

2- भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है-मनुष्य को भाषा जन्म के साथ नहीं मिलती है।भाषा सीखनी पड़ती है, अर्जित की जाती है। लोगों का मानना है कि भाषा पैतृक सम्पत्ति की भाँति अनासाय ही प्राप्त हो जाती है यह कथन पूर्णतः गलत है।जिस प्रकारयदि कोई बच्चा बचपन से ही विदेश में रहेगा तो वह हिन्दी को न बोल सकेगा न ही समझ सकेगा विदेशी भाषा ही उसकी मातृभाषा होगी। यदि भाषा पैतृक सम्पत्ति होती तो बच्चा विदेशमें रहकर भी हिन्दी भाषा सीख व बोल लेता।

3-भाषा सामाजिक वस्तु है- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज से ही वह अपने समस्त क्रिया कलापों को सीखता है। उसी प्रकार भाषा भी समाज से सीखता है। भाषा पूर्ण रूपेण आदि से अंत

तक समाज से सम्बन्धित है। भाषा के द्वारा ही हम सोचते विचारते हैं। देखा जाय तो जितनी विकसित भाषा होगी उतना ही विकसित वहां का समाज होगा। अतः भाषा एक सामाजिक वस्तु है।

4-भाषा सर्वव्यापक है- मनुष्य के प्रत्येक कार्यों का संचालन भाषा के द्वारा ही होता है। व्यक्ति का व्यक्ति से व व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध भाषा के ही द्वारा स्थापित होता है। चिन्तन मनन और सामाजिक कार्यों के लिए मनुष्य भाषा का ही सहारा लेता है। आचार्य भर्तृहरि के अनुसार सभी लौकिक कार्यों का आधार भाषा को ही माना गया है। अपने वाक्यपदीय नामक ग्रंथ में उन्हांने स्पष्ट किया है-

इतिकर्तव्यता लोके सर्वा शब्दव्यपाश्रया''

5- भाषा मानव की अक्षय निधि है-मानव मात्र का अक्षय कोष भाषा ही है। भाषा ही मानव की पूँजी है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर मानव ने जो कुछ देखा, सोचा व अनुभव किया, वही पूँजी के रूप में विद्यमान है यही बहुमूल्य निधि है।

6- भाषा चिरपरिवर्तनशील है-सामान्य रूप से देखा जाय तो भाषा अनुकरण के द्वारा सीखी जाती है। भाषा का अनुकरण ही मौखिक रूप है। उसका लिखित रूप ही मौखिक पर आधारित है।देखा जाय तो मौखिक भाषा स्वंय अनुकरण पर आधारित है। दो मनुष्यों की भाषा में समानता नहीं पायी जाती है, मनुष्य अनुकरण प्राणी होने के कारण भी पूर्ण रूप से अनुकरण की कला में निपुण नहीं है।यही अनुकरण ही भाषा में परिवर्तन लाती है। परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है अतः भाषा परिवर्तशील है।

7- भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है-प्रत्येक भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है। भाषा में थोड़ा अन्तर स्थान भेद से होता है। भाषा का वास्तविक क्षेत्र उसकी सीमा के भीतर ही होता है।जिस प्रकार अवधी, भोजपुरी व्रज हिन्दी के अर्न्तगत आते हैं,वहीं दूसरी ओर मराठी, बंगला व गुजराती आदि भाषाएं हिन्दी से अलग हैं। इस प्रकार से यदि देखा जाय तो सबकी अपनी-अपनी भौगोलिक सीमा है।

8- भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं है-भाषा निरन्तर गत्वर एवं प्रवाहमान है,इसलिए इसका अन्तिम रूप नहीं हो सकता। जिस प्रकार समस्त वस्तुएं परिवर्तित होती हैं उसी प्रकार भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। मृत शरीर की भाँति मृत भाषा का अन्तिम स्वरूप हो सकता है पर जीवित भाषा का नहीं।

1.6 भाषा का उद्गम

स्वभावतः देखा जाय तो सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई? यह विषय

अत्यन्त उलझा हुआ है, और इस विषय पर प्राचीन काल से ही विचार होता आया है, लेकिन वे अपूर्ण और अनिर्णयात्मक है।

भाषा की उत्पत्ति लाखों वर्ष पूर्व हो चुकी थी, इस पर केवल अनुमान ही किया जा सकता है। 1866 ई0 में पेरिस में भाषा विज्ञान की एक समिति की स्थापना हुई थी। उन्होंने अपने अधिनियम में यह निर्देश दिया है कि यहां भाषा की उत्पत्ति और विश्वभाषा - निर्माण इन दो बातों पर विचार नहीं किया है, भाषा की उत्पत्ति के दो सिद्धान्त प्रमुख हैं-

1-प्रत्यक्ष मार्ग

2- परोक्ष मार्ग

प्रत्यक्ष मार्ग में भाषा की उत्पत्ति के मुख्य बिन्दुओं के आधार को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। इसके विपरीत परोक्ष मार्ग में भाषा के वर्तमान रूप से भूतकालिक रूप का सर्वेक्षण किया जाता है।भाषा की उत्पत्ति को कुछ विद्वान भाषा-विज्ञान का विषय मानते ही नहीं हैं। भाषा की उत्पत्ति के जितने भी सिद्धान्त विद्वानों ने दिये हैं वे पूर्णरूपेण तर्क संगत नहीं है।इस अध्याय में हम भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे-

1.6.1-दिव्योत्पत्ति सिद्धान्त-

भाषा की उत्पत्ति का यह सबसे प्राचीन मत है। जिस प्रकार परमपिता ब्रह्मा ने मानव सृष्टि की उसी प्रकार मानव को अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए एक परिष्कृत भाषा भी दी, संस्कृत भाषा ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। देवी शक्ति ने ही इस सृष्टि के प्रारम्भ में हमें वेदों का ज्ञान प्रदान किया। मूल भाषा के रूप में वैदिक संस्कृत भाषा प्राप्त हुई, संस्कृत भाषा व उसके व्याकरण के मूल आधार पाणिनि के 14 सूत्र शिव के डमरू से निकले। वेद, उपनिषद, स्मृतियों और दर्शन ग्रंथों में वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से हुई इस विषय में प्रमाण प्राप्त है-

देवी वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पश्वो वदन्ति।(ऋग्वेद8-10)

संस्कृत वाग्देवी भाषा को देवों ने ही उत्पन्न किया है और उसे सभी प्राणी बोलते हैं।नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवप´चवारम्।इस मंत्र में भी भाषा की दैवी उत्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख है, अ इ उ ण् आदि 14 महेश्वर सूत्रों की उत्पत्ति शिव के डमरू से मानी जाती है यह भी दैवी उत्पत्ति का सूचक है । संस्कृत भाषा को ईश्वर कृत होने के कारण विश्व की सभी भाषाओं को इसका मूल मानते हैं । बौद्ध, पाली को मूल भाषा मानते रहे हैं। जैनों के अनुसार अर्धमागधी केवल मनुष्यों की ही भाषा नहीं है बल्कि सभी जीवों की मूल भाषा है। ईसाइयों ने प्राचीन विधान की हिब्रूभाषा व मुसलमानों

ने अरबी को आदिभाषा घोषित किया है, जर्मन विद्वान सुसमिल्श भाषा की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त के विषय में कहते हैं कि 'भाषा मानवकृत नहीं है, अपितु परमात्मा से साक्षात् उपहार रूप में प्राप्त हुई है। जर्मनी जर्मन भाषा को आदि भाषा एव देव भाषा कहते हैं।

समीक्षा- देवी सिद्धान्त के विषय में कुछ आपत्तियां हैं-

1-यदि भाषा ईश्वर द्वारा प्रदत्त होती तो जन्म से उसे प्राप्त हो जाती, उसे भाषा सीखने की आवश्यकता नहीं होती।

2-देखा जाय तो यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त है, तो विभिन्न भाषाओं में इतना भेद क्यों है?

3-यदि भाषा ईश्वर कृत होती तो वह पूर्णरूपेण विकसित होती क्योंकि भाषा में विकास , परिवर्धन और परिवर्तन दिखाई देता है, अतः यह ईश्वर कृत नहीं मानी जा सकती है।

1.6.2 संकेत

सिद्धान्त-संकेत सिद्धान्त को निर्णय-सिद्धान्त आदि नामों से भी जाना जाता है।संकेत सिद्धान्त के प्रवर्तक 18वीं शती के प्रसिद्ध फ्रेंच विचारक रूसो है,इनके अनुसार प्रारम्भ में मानव पशुओं के समान सिर हिलाने आदि आंगिक संकेतों से अपने भावों को व्यक्त करता था।धीरे-धीरे इन संकेतों से काम नहीं चला तत्पश्चात् एक सभा की और नामों को निर्धारित किया गया, देखा जाय तो यह एक सामाजिक समझौता है।इसके पश्चात् ध्वन्यात्मक संकेतों की उत्पत्ति हुई।

भामह के काव्यालंकार में प्रस्तुत है-

इयन्त ईदृशा वर्णा ईदृगर्थाभिधायिनः।
व्यवहाराय लोकस्य प्रागित्थं् समयः कृतः।।(काव्यालंकार6-13)

समीक्षा-संकेतसिद्धान्त में कुछ स्पष्ट कमियां हैं-

1-यदि भाषा नहीं थी तो बिना भाषा के सभा का आयोजन कैसे हुआ?
2-विचारों को अभिव्यक्त करने की भाषा क्या थी।
3-विचार विमर्श के लिए बिना भाषा के सभा का आयोजन आदि कार्य असम्भव हैं।

1-6-3- धातु सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त को रणन सिद्धान्त, अनुरणात्मक अनुकरण,अनुकरण सिद्धान्त, डिंग-डांग वाद आदि नामों से जाना जाता है।इस सिद्धान्त के प्रवर्तक प्लेटो थे। जर्मन प्रोफेसर हेज ने इसे व्यवस्थित कर आगे बढ़ाया। मैक्समूलर ने पहले तो इस सिद्धान्त को अपनी पुस्तक में स्थान दिया किन्तु बाद में निरर्थक कहकर छोड़ दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार संसार की हर चीज में अपनी एक ध्वनि होती

है।यह विशेष ध्वनि ही उसकी विशेषता होती है।टिन,लोहा,लकड़ीव काँच आदि पर हम चोट मारते हैं तो एक विशेष ध्वनि(नाद) निकलती है इसे रणन कहा जाता है।रणन सिद्धान्त के आधार पर ही लोहा,लकड़ी,टिन व काँच आदि में अन्तर किया जाता है।जिस प्रकार नदी कल-कल या नद-नद ध्वनि करती है तो उसी के आधार पर रित उसका नाम नदी रखा गया।इसी प्रकार से यदि देखा जाय तो 400-500 मूल शब्दों या धातुओं का निर्माण किया गया।

समीक्षा-इस सिद्धान्त पर विचार करने पर कुछ दोष भी पाये गये-

1-भाषा केवल धातु से ही नहीं बनती है इसके लिए प्रत्यय, उपसर्ग आदि अन्य घटकों की भी आवश्यकता पड़ती है।

2-इस सिद्धान्त पर विचार करने पर इसमें इतने दोष थे कि प्रो0 मैक्समूलर ने इसे छोड़ दिया।

3-घण्टे में यह ध्वनि है,परन्तु सभी पदार्थों में यह ध्वनि नहीं है। देखा जाय तो अस्वीकृत होने के पश्चात् भी यह सिद्धान्त रोचकता के लिए प्रचलित है।

4-इसका कोई सुदृढ़ आधार नहीं है।यह सिद्धान्त कल्पना पर आधारित है।

1-6-4 ध्वन्यनुकरण सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को अनुरणनमूलकतावाद,अनुकरण-सिद्धान्त सामान्यतहः अंग्रेजी में कुत्ते की ध्वनि को इवू.वू बाउ-वाउ कहते हैं देखा जाय तो हिन्दी में यह भों-भों वाद हुआ ।वास्तव में इस सिद्धान्त का मूल नाम 'ओनोमेटोपोइक थ्योरी' है जिसका अर्थ है ध्वन्यनुकरण सिद्धान्त । प्रो0 मैक्समूलर ने इस सिद्धान्त को उपहासास्पद बताया । इस सिद्धान्त के अनुसार पशु-पक्षियों आदि की ध्वनि के अनुकरण अलग-अलग वस्तुओं के नाम रखे गये हैं जो वस्तु जैसी ध्वनि करती है उसका वैसा ही नाम पड़ता है। जैसे-कू-कू से कोयल, काँव-काँव से कौवा और काक, पट्-पट् से पटाखा, झर-झर से झरना आदि है।ध्वनि साम्य के आधार पर भाषा में कुछ शब्द मिलते हैं ।जैसे-गुर्राना, मिमियाना,थपथपाना, रंभाना,खटखटाना,पट-पट, खट-खट,झम-झम आदि। संस्कृत में नद-नद के आधार पर ही नद या नदी आदि शब्द हैं। इसी प्रकार पत् धातु के आधार पर पत् ध्वनि गिरना है।

समीक्षा- इस सिद्धान्त पर भी कुछ आपत्तियां हैं 1-यदि ध्वन्यनुकरण ही आधार होता तो सभी भाषाओं में अर्थों के लिए एक समान शब्द होते जैसे काक-कौवा, झरना-निर्झर आदि का ही भेद नहीं है अपितु अंग्रेजी,फ्रेंच आदि के लिए सर्वथा पृथक् शब्द है।

2-प्रो0 रेनन ने इस सिद्धान्त का विरोध इस आधार पर किया है कि संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने के

बाद भी मनुष्य स्वंय में कोई ध्वनि उत्पन्न नहीं कर सका।

3- आंशिक रूप से स्वीकार्य होते हुए भी यह मत भाषा की उत्पत्ति के लिए अस्वीकार्य है।

1.6.5 आवेग-सिद्धान्त

यह सिद्धान्त को मनोभावाभिव्यक्तिवाद, मनोरागव्यंजक, मनोरागव्यंजक शब्दमूलकतावाद, पूह-पूहवाद आदिनामों से जाना जाता है। आवेग सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में मानव विचार-प्रधान प्राणी न होकर पशुओं की भाँति भाव प्रधान था। मनुष्य ने अपने दुःख, हर्ष, शोक, विस्मय आदि भावों को प्रकट करने के लिए शब्दों या ध्वनियों का उच्चारण किया। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा बन गई। हर्ष या खुशी में अहो, वाह आदि, शोक या दुःख में आह, हाय, रे, क्रोध में आः आदि शब्द हैं। अंग्रेजी में मनोभावसूचक चववी(पूह) पिम(फाई) वी(ओह) आदि शब्द हैं। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा का विकास हुआ।

समीक्षा- इस सिद्धान्त में कुछ दोष हैं

1-आवेग-शब्दों में चिन्तन का नाम भी नहीं है। जबकि भाषा चिन्तन प्रधान होती है।
2- आवेग ध्वनियां भाषा की अक्षमता को सूचित करती हैं, ये भाव भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते हैं अतः इस कारण इनसे भाषा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।प्रो0 बेन्फी ने इसका विरोध किया है।
3-आवेग सिद्धान्त आवेगात्मकता को ही प्रकट करते हैं, सामान्य भावों की अभिव्यक्ति को नहीं। इस कारण इनका सम्बन्ध भाषा के मुख्य अंग से नहीं है।
4-आवेग-शब्दों की संख्या नगण्य होने के कारण यह सिद्धान्त मान्य नहीं है
इस कारण से यदि देखें तो यह सिद्धान्त भाषा की उत्पत्ति की समस्या को हल करने में सर्वथा असमर्थ है।

1.6.6 श्रम-ध्वनि-सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को यो-हे-हो सिद्धान्त या श्रम-परिहरणमूलकतावाद सिद्धान्त भी कहते हैं। न्यारे नामक भाषा शास्त्री इस सिद्धान्त के जन्मदाता हैं।उनके अनुसार जब मनुष्य शारीरिक परिश्रम करता है तो उसकी सांस तेजी से बढ़ जाती है। मांसपेशियों में ही नहीं बल्कि स्वरतंत्रियों में भी संकोच-विस्तार बढ़ जाता है, इस कारण कुछ ध्वनियां अचानक निकल जाती हैं जिस कारण परिश्रम करने वाले को कुछ आराम का अनुभव होता है। जिस प्रकार धोबी कपड़े धोते समय 'हियो' या 'छियो' कहता है। मल्लाह थकान के कारण 'यो-हे-हो कहते हैं।

समीक्षा- यह सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण नहीं है इस सिद्धान्त में कई आपत्तियां हैं-

1- इन ध्वनियों का भाषा में कोई स्थान नही है।

2- भाषा की उत्पत्ति के लिए सार्थक शब्दों की आवश्यकता होती है शारीरिक श्रम से जन्मे ये शब्द निरर्थक हैं।

1.6.7 इंगित-सिद्धान्त

डॉ0 राये इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। इसके पश्चात् डार्विन ने छह असम्बद्ध भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस सिद्धान्त को प्रमाणित किया। प्रो0 रिचर्ड ने 1930 में इस सिद्धान्त को पुनः अपनी पुस्तक में मौखिक इंगित सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया। इस मत के अनुसार मनुष्य ने अपनी आंगिक अर्थात् अंगों की चेष्टाओं का वाणी के द्वारा अनुकरण किया और उसी से भाषा बनी।

समीक्षा- इस सिद्धान्त में भी कुछ आपत्तियां हैं-

1- मनुष्य की आंगिक चेष्टाओं जैसे हाथ, पैर, ओष्ठ आदि के आधार पर शब्द रचना सारहीन है।

2- इस सिद्धान्त पर बने सिद्धान्तों की संख्या बहुत कम है।

3-मनुष्य ने अपने ही अनुकरण पर शब्द रचना की है जो हास्यपद है। यदि दूसरे के अनुकरण पर शब्द रचना होती तो यह मान्य होती।

1-6-8 संपर्क सिद्धान्त

इस मत के प्रर्वतक जी0 रेवेज नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैं। इस मत के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसमें एक दूसरे के प्रति पारस्परिक संपर्क की प्रवृत्ति जन्म से ही होती है। देखा जाय तो जब मनुष्य एक दूसरे से संपर्क करेंगे तो इसी आधार पर समाज बनता है।और उनमें प्रारम्भिक भावनाओं को जैसे भूख-प्यास आदि को एक दूसरे पर अभिव्यक्त करने के लिए तरह-तरह के सम्पर्क स्थापित किये जाते थे और साथ ही साथ मुखोच्चरित ध्वनियाँ भी सहायक रही होंगी भाषा उसी का विकसित रूप है। जैसे-जैसे संपर्क की आवश्यकता बढ़ती गई वैसे-वैसे उसकी स्पष्टता का अनुभव और ध्वनि का विकास भी होता गया।

सम्पर्क ध्वनि का विकास संसूचक ध्वनि से होता है। इसके अर्न्तगत चिल्लाना, पुकारना आदि सम्मिलित हैं। धीरे-धीरे जैसे-जैसे विचारों के स्तर पर सम्पर्क बढ़ता गया वैसे-वैसे भाषा भी विकसित हुई। जिस प्रकार 'माँ' का अर्थ माँ दूध दो या पानी दो आदि। इस प्रकार देखा जाय तो क्रिया पहले आयी और संज्ञा बाद में व व्याकरणिक दृष्टि से ये शब्द न होकर वाक्य होंगे,तत्पश्चात् विकास होने

पर कई प्रकार के शब्दों को मिलाकर छोटे-छोटे वाक्य बने व निरन्तर संपर्क बढ़ने से भाषा का विकास हुआ।

समीक्षा:-1- यह सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा मानने योग्य है।

2- इस सिद्धान्त में मनोवैज्ञानिक ढंग से उत्पत्ति और विकास के सामान्य सिद्धान्त का ही विवेचन है।

3-कॉसिडी नामक प्रसिद्ध विद्वान के अनुसार भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी इस सिद्धान्त के अनुसार भी भाषा की उत्पत्ति की समस्या सुलझ नहीं सकी।

4- इस सिद्धान्त का आधार काल्पनिक व आनुमानिक है।

1.6.9 संगीत सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक डार्विन, स्पेंसर व येस्पर्सन हैं।इस सिद्धान्त के अनुसार मानव के संगीत से भाषा की उत्पत्ति हुई।यह सिद्धान्त प्रेम सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है।सम्भवतः यह रहा होगा कि आदिम मनुष्य अत्यधिक भावुक व संगीत प्रिय रहा होगा, वह अपने खाली समय में कुछ गुनगुनाता रहा होगा। उसी गुनगुनाने से जो ध्वनियाँ बनीं उसी से भाषा की उत्पत्ति है।

समीक्षा-

1-प्रारम्भ में मनुष्य गुनगुनाता था इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

2-गुनगुनाने मात्र से यदि भाषा की उत्पत्ति हुई ऐसा केवल अनुमान पर आश्रित है ऐसी स्थिति में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

3-इस सिद्धान्त का सम्बन्ध प्रेम से अधिक है इस कारण कुछ लोगों ने इसे प्रेम सिद्धान्त भी कहा है।

1.6.10 टा-टा सिद्धान्त

प्रारम्भ में जब आदिम मानव काम करते थे तो उस समय वे जाने अनजाने उच्चारण अवयवों से काम करने वाले अवयवों की गति का अनुकरण करते थे । बाद में इस अनुकरण से कुछ ध्वनियों और ध्वनि संयोगों से शब्दों का उच्चारण हो जाया करता था ।

समीक्षा

1-देखा जाय तो भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न इस सिद्धान्त में भी सुलझता नहीं दिखाई देता है । आज का सभ्य मानव न ऐसा अनुकरण करता है और न ही अविकसित मानव ।

2-बन्दरों में भी यह प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती जो कि हमारे तथाकथित जनक हैं ।

3-प्रारम्भिक निरर्थक ध्वनियों से भाषा का विकास कैसे हुआ इसका कहीं भी उत्तर नहीं दिया गया है।

1.6.11 समन्वय सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक व समर्थक हेनरी स्वीट नामक भाषा शास्त्री हैं।उन्होंने कोई नया सिद्धान्त प्रस्तुत न करके सर्वसिद्धान्त संकलन को अधिक उपर्युक्त समझा है । भाषा का प्रारम्भ अनुरणनात्मक, भावाभिव्यंजक और प्रतीक शब्दों एवं उपचार सिद्धान्त के समन्वित रूप से हुआ। प्रोफेसर स्वीट ने तीन प्रकार के शब्दों को तीन भागों में बाँटा है।

पहले प्रकार के शब्द अनुकरणात्मक हैं। जैसे-बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ, कौवा का-का व कोयल कु-कू शब्द करती है। दूसरे प्रकार के शब्द भावाभिव्यंजक या मनोभावाभिव्यंजक है। जैसे-ओह, हा, धिक्,हाय आदि शब्द हैं। तीसरे प्रकार के शब्द प्रतीकात्मक हैं जैसे नर्सरी शब्द माता,पिता,भाई-बहन आदि शब्द हैं। भाषा में प्रारम्भिक शब्दों की संख्या बहुत अधिक रही होगी। इस प्रकार यदि देखा जाय तो स्वीट के अनुसार भावाभिव्यंजक, अनुकरणात्मक तथा प्रतीकात्मक शब्दों से भाषा की उत्पत्ति हुई।तत्पश्चात् उपचार प्रयोग से शब्दों का विकास हुआ।

समीक्षा-1-भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी इस सिद्धान्त में भाषा-शास्त्री हेनरी स्वीट ने सभी सिद्धान्तों का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है।

2-देखा जाय तो यह सिद्धान्त निर्विरोध रूप से स्वीकार किया गया।

3-हेनरी-स्वीट का समन्वय सिद्धान्त भी भाषा की उत्पत्ति की समस्या का समाधान पूर्ण रूप से सुलझा नहीं सका।

बोध प्रश्नः-

1- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-

(क) मनुष्य को भाषा...........के साथ नहीं मिलती है।

(ख) भाषा की उत्पत्ति...........वर्ष पूर्व हो चुकी थी।

(ग) भाषा का वास्तविक क्षेत्र उसकी....... के भीतर ही होता है।

(घ) भाषा निरन्तर गत्वर एवं..........है।

2-निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) भाषा की उत्पत्ति का सबसे प्राचीनतम सिद्धान्त है।

(क) संकेत सिद्धान्त (ग) दिव्योत्पत्ति सिद्धान्त

(ख) धातु सिद्धान्त (घ) आवेग सिद्धान्त

(2) समन्वय सिद्धान्त के प्रवर्तक कौन हैं?

(क) डार्विन (ग) स्पेंसर

(ख) हेनरी स्वीट (घ) डॉ0 राये

1.7 भाषा का विकास

परिवर्तन सृष्टि का नियम है क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन है। देखा जाय तो इसी परिवर्तन को विकास कहते हैं, क्योंकि परिवर्तन से ही जीवन में चेतना है।मनुष्य जिस प्रकार पुराने वस्त्र को पुराने शरीर के समान त्यागकर नये वस्त्र के समान नये शरीर को धारण करता है उसी प्रकार भाषा में भी परिवर्तन होता है जैसे प्राचीन समय की वैदिक संस्कृत अपने पुराने रूप को त्यागकर लौकिक संस्कृत में परिवर्तित हो गयी और फिर शनैः-शनै पाली प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमान समय में हिन्दी भाषा के रूप में प्रस्तुत हुई है। विभिन्न भाषाओं के अध्ययन के पश्चात देखा जाय तो काल-भेद, स्थान-भेद और परिस्थिति भेद से भी भाषा में भिन्नता देखी गयी है। यदि हम देखें तो भाषा के विकास के विषय में प्राचीन समय से ही विचार होता रहा है संस्कृत में जिन शब्दशास्त्रियों ने इस विषय में विचार किया है उनमें आचार्य पाणिनि,यास्क पतंजलि, कात्यायन, काशिकाकार, जयादित्य वामन नागेश भट्ट हैं। वर्तमान समय में भी अनेक विद्वानों ने विशद विवेचन किया है। भाषा में विकास को हम दो भागों में बांट सकते हैं।

1. आभ्यन्तर या आन्तरिक

2. बाह्य या बाहरी, आभ्यन्तर कारण वे हैं जिनका सम्बन्ध भाषा की स्वाभाविक गति से है। बाह्य कारण वे हैं जो भाषा को बाहर से प्रभावित करते हैं इस इकाई में हम दोनों का अलग-अलग वर्णन

करेंगे-

(क) आभ्यन्तर कारण

1-अपूर्ण श्रवण-भाषा अर्जित सम्पत्ति है भाषा अपने पूर्वजों से,शिक्षकों से एवं समाज से सीखी जाती है। एक बच्चा अपने माता-पिता से भाषा सीखता है सीखने की प्रक्रिया में तीन बातें होती हैं।

1-सुनना 2-स्मरण रखना 3-पुनः उच्चारण । इसमें कितनी ही ध्वनियाँ इस प्रकार की होती हैं जो पहली बार सुनने पर हमें स्पष्ट नहीं सुनायी पड़ती है कि उनकी मात्रा ह्रस्व है या दीर्घ, व है या ब,श है या स अनेक बार उच्चारण करने से ही शब्द स्पष्ट सुनाई देता है। यदि बच्चे से सुनने में अशुद्धि होती है तो वह उसका उच्चारण भी अशुद्ध ही करता है इसी प्रकार भाषा में अशुद्धियाँ हो गयी ।

2-बल-बोलते समय किसी खास शब्द या ध्वनि पर विशेष बल दिया जाता है और किसी पर कम जिस कारण से वह अन्य ध्वनियों को कमजोर बना देता है। वे बातें बार-बार दोहरायी जाती है और वे जोर से बोली जाती हैं। इस कारण से बलाघात वाली ध्वनि अधिक प्रबल हो जाती है और उसके आगे-पीछे की ध्वनि निर्बल व कमजोर हो जाती है। इस कारण भी भाषा में विकास या परिवर्तन होता है।

3-अनुकरण की अपूर्णता-अपूर्ण अनुकरण भाषा में परिवर्तन का मुख्य कारण है।मनुष्य अनुकरण से ही भाषा का अर्जन करता है।अनुकरण पूर्ण है तो शब्दों का उच्चारण ठीक होगा। देखा जाय तो अधिकांशतः अनुकरण अपूर्ण ही होता है जैसे बच्चा बचपन में अपने माता पिता आदि के द्वारा उच्चारित शब्दों को सुनकर अनुकरण से बोलता है यदि बच्चे का उच्चारण स्पष्ट नही होता है तो उसे बार-बार उच्चारित करके ठीक कराया जाता है अनुकरण की अपूर्णता के कई कारण है-

(क) वागिन्द्रिय की विभिन्नता- प्रत्येक मनुष्य घ्वानि का उच्चारण अगों के सहारे करता है किन्तु प्रत्येक मनुष्य की वागिन्द्रिय एक समान नही होती है। प्रायः यह देखा गया है कि स्त्रियों और पुरूषों के उच्चारण में अन्तर होता है केवल इतना ही नहीं बच्चे, युवा व वृद्ध व्यक्ति के उच्चारण में बहुत विभिन्नता होती है। किसी की ध्वनि मोटी, किसी की पतली व किसी की बेसुरी होती है। आचार्य पाणिनी के अनुसार वर्णों को दबाकर नहीं बोलना चाहिए। ध्वनि कितनी स्पष्ट है यह वागयन्त्र पर निर्भर है ।

(ख) अशिक्षा- अशिक्षा के अभाव में अनुकरण अपूर्ण रह जाता है शिक्षा के अभाव के कारण अधिकाशं ग्रामीण जन अशिक्षित हैं जिस कारण वे ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं इस कारण उच्चारण दोषयुक्त होता है और भाषा में परिवर्तन हो जाता है। ष को स, श को स, ब को व, व को ब एवं ण को न आदि उच्चारण किया जाता है। जैसे कक्षा को कच्छा, छात्र को क्षात्र, क्षत्रिय को छत्रिय,गुण का गुन, सगुण का सगुन, रिपोर्ट का रपट, गार्ड का गारद आदि शब्द हैं।

(ग) लिपि की अपूर्णता-यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा में कुछ विशिष्ट ध्वनियां हैं जिनका स्पष्ट

लेखन अन्य भाषा में सम्भव नही हैं, जिस प्रकार संस्कृत की ट वर्ग ध्वनियां, अंग्रेजी (z),अरबी की काकल्य ध्वनियां, जर्मन, फ्रेंच और रूसी ध्वनियाँ दूसरी भाषा में ठीक नहीं लिखी जा सकती हैं। देखा जाय तो विभिन्न संस्कृतियों के मिलने पर मूल भाषा की ध्वनियों में बहुत अन्तर आता है।

(घ) प्रयत्न लाघव- प्रयत्न लाघव भाषा में विकास लाने वाले कारणों में सबसे महत्वपूर्ण है। मानव की हमेशा से यह प्रवृत्ति रही है कि वह कम प्रयत्न से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है। कम से कम प्रयत्न से लोग शब्दों को उच्चरित करना चाहते हैं।देखा जाय तो यदि लघुमार्ग से काम चल जाय तो वहाँ पर अधिक प्रयत्न क्यों किया जाय?

प्रयत्न लाघव को 'मुखसुख' भी कहते हैं। मुखसुख का अर्थ है सरलता की प्रवृत्ति के कारण बड़े शब्दों को छोटा करके बोलना। जैसे मास्टर साहब का मास्साब, स्कूल का इस्कूल, स्नान का अस्नान, भारतवर्ष का भारत, बीबी जी का बीजी, आदि सरल शब्द के द्वारा बोलने का प्रयास है

4-जानबूझकर परिवर्तन- कभी-कभी भाषा में लेखक जानबूझकर भी परिवर्तन कर देते हैं। जिस प्रकार प्रसाद ने अलैक्जैंडर का अलक्षेन्द्र किया लेकिन यह परिवर्तन स्वाभाविक नही है। जैसे- संस्कृत में साहित्यकारों ने इसी प्रकार देशज तथा विदेशी शब्दों का संस्कृतिकरण किया है जैसे अरबी में आफियून का अहिफेन आदि। उपयुक्त शब्द न मिलने पर कभी-कभी लोग जानबूझकर उससे मिलते नये शब्द का नये अर्थ में प्रयोग कर देते हैं इस प्रकार से भाषा में परिवर्तन हो जाता है।

5- प्रयोगाधिक्य- अत्यधिक प्रयोग के कारण जिस प्रकार वस्तुएं घिस जाती हैं भाषा में भी उसी प्रकार

(ख) बाह्य कारण-

1- भौगोलिक प्रभाव- भाषा पर सबसे अधिक प्रभाव भूगोल या जलवायु का पड़ता है। भाषा के परिवर्तन में जर्मन भाषा शास्त्री हाइनरिश मेयर बेन्फी और कोलित्स ने भौगोलिक प्रभाव को विशेष महत्व दिया है। जर्मन भाषाशास्त्री के अनुसार वर्ण-परिवर्तन का कारण भौगोलिक परिस्थितियां हैं। जलवायु का मनुष्य के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। मैदानी व उपजाऊ भूमि पर देखा जाय तो भाषा का प्रचार प्रसार अधिक होता है क्योंकि वहां जनसंख्या अधिक होती है जिस कारण लोगों को एक दूसर से मिलने का अवसर मिलता है। अधिक जनसंख्या के कारण विभिन्न जातियां मिलती हैं जिस कारण भाषा परिवर्तन सरलता से होता है मैदानी भागों की अपेक्षा पर्वतीय और दुर्गम स्थानों में भाषा में परिवर्तन व उसका प्रसार कम होता है।

मूल भाषा से वैदिक संस्कृत और अवेस्ता भाषाओं की उत्पत्ति हुई। देखा जाय तो भौगोलिक भेद के

कारण दोनों ही ध्वनियों में अन्तर हो गया। संस्कृत में स् अवेस्ता में ह् हो जाता है जिस प्रकार सिन्धु का हिन्दु,असि का अहि। भौगोलित भेद के कारण ही मूल भाषा से उत्पन्न होने के कारण भी गुजराती,मराठी, पंजाबी आदि पृथक्-पृथक् है। पतंजलि के अनुसार स्थान भेद से भाषा में अन्तर हो जाता है।

2-सांस्कृतिक प्रभाव- संस्कृति समाज का अभिन्न अंग व समाज का जीवन है अतः इस कारण भाषा पर उसका प्रभाव पड़ता है सांस्कृतिक प्रभाव भी कई कारणों से हो सकता है जिसका वर्णन हम करेंगे-

(क) सांस्कृतिक संस्थाएँ- सांस्कृतिक संस्थाएँ जहाँ एक ओर अपने धार्मिक विचारों का व्यक्त करती हैं वहीं दूसरी ओर प्राचीन शब्दों को फीर प्रस्तुत करती हैं उन्नीसवीं सदी के अन्त व बीसवीं सदी के प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द के द्वारा संस्कृत युक्त हिन्दी शब्दों पर विशेष बल दिया गया। जिस कारण हिन्दी भाषा में संस्कृत युक्त शब्द प्रयुक्त होने लगे।

(ख) व्यक्ति- भाषा पर तभी महान व्यक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तरी भाषा को प्रभावित किया तुलसीदास ने कई शब्दों को अपनी कविता में तुक आदि के लिए प्रयुक्त किया वे भी प्रचलन में आ गये । उनके बाद जितने भी कवि हुए उनकी शैली इनसे प्रभावित हुई।

(ग) संस्कृतियों का सम्मेलन- विभिन्न संस्कृतियों के मिलने से भाषा में एक नया रूप आ जाता है। भारत तो संस्कृतियों का देश है यहाँ अनेक संस्कृतियों का मिलन हुआ। जैसे आस्ट्रिक और द्रविड़, आर्य और द्रविड़, आर्य और यवन, आर्य और मुसलमान, आर्य और यूरोपीय इन संस्कृतियों के मिलन से भारतीय भाषा पर सैकड़ों शब्द प्रचलन में आ गये।

3. सामाजिक प्रभाव- भाषा ही समाज का दर्पण है। जिस प्रकार समाज में उन्नति और अवनति होती है ठीक उसी प्रकार से भाषा में भी ह्रास और विकास होता है। भारत में समय-समय पर विभिन्न विदेशी जातियों का आगमन हुआ इसका प्रभाव रहन-सहन के साथ-साथ भाषा पर भी पड़ा । देखा जाय तो अपभ्रंश काल का साहित्य भाषा परिवर्तन का युग है या हम कह सकते हैं कि एक उदाहरण है। विदेशी जातियों के आगमन से सहस्रों नये शब्दों की उत्पत्ति हुई जैसे- अदालत, गुलाम, कचहरी, तहसीलदार, बीबी, गर्वनर आदि शब्द इसी के प्रतीक हैं।

4. वैज्ञानिक प्रभाव-आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के प्रभाव से भाषा भी दूर नहीं है। जिस प्रकार विज्ञान में नये-नये आविष्कार और अनुसंधान हो रहे है उसी प्रकार नई शब्दावली भी बनती जा रही है। अन्य विषयों को यदि हम छोड़ भी दे तो भाषा विज्ञान और भाषा शास्त्र को ही लें

तो हर वर्ष इसमें सैकड़ों नये शब्द आते हैं। विज्ञान में पारिभाषिक शब्दों की संख्या बढती जा रही है आधुनिक युग में संकेत शब्दों की ओर रूचि बढ़ती जा रही है।

(ग) सादृश्य-भाषा के विकास में जिस प्रकार आन्तरिक व बाह्य कारण का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार सादृश्य का भी बहुत महत्व है। सादृश्य विश्व की प्रत्येक भाषा में देखा गया है सादृश्य ध्वनि, शब्द, अर्थ और वाक्य रचना सभी को प्रभावित करता है।

जिस प्रकार द्वादश में द्वा$दश में आ की मात्रा आती है इसके विपरीत यदि देखें तो एकादश में एकदश में आ नही आना चाहिए था इसका कारण यह है कि द्वादश में मिथ्या सादृश्य से एकदश का एकादश हो गया। जिस प्रकार हिन्दी भाषा में सादृश्य के आधार पर अनेक शब्द बने, उसी प्रकार अंग्रेजी भाषा में भी शब्द बनें । जैसे Ring को Rang, Sing का Sang बनने लगे।इस प्रकार से यदि हम देखें तो सादृश्य भाषा के विकास के कारण के रूप में विश्व की सभी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व बनाये रखता है।

3-नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में तथा गलत वाक्यों के सामने का चिह्न लगाइये-

(क) अपूर्ण अनुकरण भाषा में परिवर्तन का मुख्य कारण है । ( )
(ख) प्रयत्न लाघव भाषा में विकास लाने वाले कारणों में महत्वपूर्ण नहीं है । ( )
(ग) भाषा अर्जित सम्पत्ति है ( )
(घ) संस्कृति समाज का अभिन्न अंग व समाज का जीवन है । ( )

4-रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये

(क) बोलते समय किसी खास शब्द या ध्वनि पर विशेष ....दिया जाता है।

(ख) विभिन्न ....के मिलने से भाषा में एक नया रूप आ जाता है।
(ग) प्रयत्न लाघव को...........भी कहते हैं ।
(घ) आभ्यन्तर कारण को .... कारण भी कहा जा सकता है

1.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भाषा के अर्थ व परिभाषाओं से परिचित हुए, साथ ही साथ आपने भाषा की विशषताओं का अध्ययन किया। भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों को आपने जाना। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि कोई भी सिद्धान्त भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी रहस्य का समाधान

नहीं कर सका। भाषाशास्त्री भाषा के विकास या परिवर्तन को समझा सकते हैं किन्तु भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित नहीं कर पाये।

इस इकाई में आपने भाषा की उत्पत्ति के साथ ही साथ उसके विकास या परिवर्तन को भी जाना।

1.9 शब्दावली

सर्वव्याप्त - सभी जगह फैली हुई

अर्जित - सीखा जाना

प्रदत्त - प्रदान की गयी

आंगिक - अंगों की चेष्टाएँ

निर्विरोध - बिना विरोध के

प्रयोगाधिक्य - अत्यधिक प्रयोग

नर्सरी शब्द - प्रारम्भिक शब्द

1.10 बोध-प्रश्नों के उत्तर

1-(क) जन्म (ख) लाखों (ग) सीमा (घ) प्रवाहमान

2- (1) गः- दिव्योत्पत्ति

(2) खः- हेनरी स्वीट

3- (क) सही (ख) गलत (ग) सही (घ) सही

4- (क) बल (ख) संस्कृतियों (ग) मुख-सुख (घ) मौलिक

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी - भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी-221 001

(2)डॉ0भोलानाथतिवारीभाषाविज्ञान
किताब महल,22-। सरोजनी नायडू मार्ग,इलाहाबाद

1.12 उपयोगी पुस्तकें

(1) भाषा-विज्ञान - डॉ0 श्याम सुन्दर दास

(2) भाषा और भाषा-विज्ञान - प्रो0 रामाश्रय मिश्र

(3)भाषा शास्त्र की रूपरेखा - डॉ0 उदयनारायण तिवारी

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1- भाषा किसे कहते हैं?भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2- भाषा के विकास को समझाइए।

इकाई 2 भाषाविज्ञान -स्वरूप ,अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भाषा विज्ञान की परिभाषा

2.4 भाषा विज्ञान कला है या विज्ञान

2.5 भाषा-विज्ञान के प्रकार

 2.5.1 सामान्य भाषा-विज्ञान

 2.5.2 वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान

 2.5.3 ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान

 2.5.4 तुलनात्मक भाषा-विज्ञान

 2.5.5 सैद्धांतिक भाषा-विज्ञान

2.6 भाषा-विज्ञान के अंग

 2.6.1 ध्वनि विज्ञान

 2.6.2 पद विज्ञान

 2.6.3 वाक्य विज्ञान

 2.6.4 अर्थ विज्ञान

 2.6.5 भाषा की उत्पत्ति

 2.6.6 कोश विज्ञान

 2.6.7 भाषिक भूगोल

 2.6.8 लिपि विज्ञान

2.7 भाषा-विज्ञान का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध

 2.7.1 भाषा-विज्ञान और व्याकरण

 2.7.2 भाषा-विज्ञान और साहित्य

 2.7.3 भाषा-विज्ञान और मनोविज्ञान

 2.7.4 भाषा-विज्ञान और भौतिक विज्ञान

1.2 प्रस्तावना

'भाषा' शब्द संस्कृत की 'भाष' धातु व्यक्त वाक्(व्यक्तायां वाचि) से बना है,तथा विज्ञान शब्द 'वि' उपसर्ग 'ज्ञा' धातु से ल्युट् प्रत्यय लगने पर बनता है। इस प्रकार यदि देखें तो भाषा-विज्ञान दो शब्दों के योग से बना है भाषा और विज्ञान। यदि हम सामान्य रूप से इसका अर्थ निकालें तो भाषा का अर्थ है बोलचाल की भाषा व विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान।

जैसा कि नाम से प्रकट होता है "भाषायाःविज्ञानम्'' अर्थात् भाषा का विज्ञान। मानव की प्रगति पर भाषा विशेष रूप से सहायक होती है, भाषा के द्वारा ही हमारे पूर्वजों के सारे अनुभव हमें प्राप्त हुए। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने कारण अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा का प्रयोग करता है।देखा जाय तो मनुष्य के विकास के साथ-साथ भाषा का भी विकास होता रहा है।

महाकवि दण्डी ने काव्यादर्श में कहा है-

इदमन्धंतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते।।

इस संसार में शब्द स्वरूप ज्योति का प्रकाश न होता तो यह सम्पूर्ण संसार अंधकारमय हो जाता। भाषा ज्ञान को प्रकाशित करती है उसके बिना ज्ञान सम्भव नहीं है। भाषा ही एक वह साधन है जिसके माध्यम से हम अपने विचारों को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- विभिन्न विद्वानों के मतानुसार भाषा-विज्ञान की परिभाषा को जान सकेंगे।
- भाषा-विज्ञान के अध्ययन के प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- भाषा-विज्ञान के अंगों से परिचित हो सकेंगे।
- इसके साथ ही साथ यह भी जान पायेंगे कि भाषा-विज्ञान का अन्य शास्त्रों के साथ क्या सम्बन्ध है।

2-3 भाषा विज्ञान की परिभाषा

जिस शब्द में भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं उसे भाषा-विज्ञान कहते हैं।

भाषा-विज्ञान की परिभाषा के विषय में विद्वानों में मतभेद है-

कपिलदेव द्विवदी के अनुसार- भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन किया जाता है।

मंगलदेव शास्त्री के अनुसार-भाषा विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का और अन्ततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

डॉ0 देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार-भाषा विज्ञान का सीधा अर्थ है-भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा-विज्ञान कहलायेगा।

डॉ0 देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार-भाषा-विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं।भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।

डॉ0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार-

(क)भाषा-विज्ञान के वैज्ञानिक अध्ययन को ही भाषा-विज्ञान कहते हैं।वैज्ञानिक अध्ययन से हमारा तात्पर्य सम्यक् रूप से भाषा के बाहरी और भीतरी रूप एवं विकास आदि के अध्ययन से है।

(ख)भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा-विशिष्ट, कई और सामान्य-का समकालिक , ऐतिहासिक,तुलनात्मक और प्रायोगिक दृष्टि से अध्ययन और तद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।

डॉ0 श्यामसुन्दर दास के अनुसार-भाषा-विज्ञान, भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट,उसके विकास तथा उसके ह्रास की वैज्ञानिक व्याख्या करता है।

डॉ0 बाबूराम सक्सेना के अनुसार-भाषा विज्ञान का अभिप्राय भाषा का विश्लेषण करके उसका दिग्दर्शन कराना है।

डॉ0रामेश्वर दयालु के अनुसार- भाषा-विज्ञान भाषा सम्बन्धी समस्त तथ्यों एवं व्यापारों से सम्बन्ध रखता है। उसमें संसार की भाषाओं के गठन, इतिहास, परिवर्तन, भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध, उनके पार्थक्य, पार्थक्य के कारणों एवं नियमों आदि समस्त विषयों पर विचार होता है।

डॉ0 अम्बाप्रसाद सुमन के अनुसार-भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप

से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति,संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टि से सिद्धान्त निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार-भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है,जिसमें भाषा का सर्वांगीण विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार-विभिन्न अर्थो में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रकट करते हैं।

डॉ0 मनमोहन गौतम के अनुसार- भाषा-विज्ञान वह शास्त्र है, जिसमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा की उत्पत्ति, बनावट, प्रकृति, विकास एवं ह्रास आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की जाती है।

डॉ0 देवेन्द्र प्रसाद सिंह के अनुसार-भाषा-विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा का सामग्री-संकलन वर्णनात्मक,विकासात्मक,तुलनात्मक,प्रायोगिक या इसमें से किसी भी विधि से विश्लेषण के द्वारा निरूपित सिद्धान्त के आधार पर अध्ययन होता है।

2.4 भाषा-विज्ञान विज्ञान है या कला

भाषा-विज्ञान कला है या विज्ञान यह प्रश्न कई विद्वानों ने उठाया है। जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं कि जिस विषय में भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है वही विज्ञान है या हम कह सकते हैं विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान । कुछ विद्वानों ने इसे भाषा शास्त्र भी कहा है लेकिन इस कारण से इसे विज्ञान स्वीकार करना पर्याप्त नहीं होगा इसके लिए हमें विज्ञान शब्द पर विचार करना होगा।प्राचीनतम ग्रंथों में तो कहीं ब्रह्म विद्या को भी विज्ञान माना जाता था। इस प्रकार यदि हम देखें तो किसी विषय के क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है।

इसके विपरीत यदि कला को देखें तो कला में विकल्पात्मक प्रतीति होती है। मानव में दो प्रकार का अनुभव होता है ब्राह्य जगत या बाहरी संसार व मानसिक अवस्थाएं। विज्ञान ब्राह्य जगत से सम्बन्धित है कला को देखें तो यह आवश्यक नहीं कि उसका रूप वास्तविक हो। यदि कला का रूप वास्तविक भी होता तो उसका निर्धारण मन के आन्तरिक भावों को जाग्रत करने की क्षमता से किया जायेगा।संक्षेप में हम कह सकते हैं कि रस बोध से रहित ज्ञान विज्ञान की श्रेणी में आता है व परिवर्तित व रस बोध से युक्त ज्ञान कला की श्रेणी में आता है। यदि हम इस दृष्टि से विचार करें तो भाषा विज्ञान कला की श्रेणी में कम व विज्ञान की श्रेणी में अधिक आता है। क्योंकि भाषा विज्ञान का सम्बन्ध भाषा की ध्वनियों का विश्लेषण व विवेचन करने से है, इसका रसबोध से कोई सम्बन्ध नहीं

है। साहित्यिक अनुभूति एवं मनोरंजन आदि इसके लक्ष्य न होकर किसी ठोस तत्व के निष्कर्ष पर पहुंचना भाषा विज्ञान का लक्ष्य है।

यदि देखा जाय तो भाषा विज्ञान रसायन एवं भौतिक विज्ञान की ही भाँति पूर्ण विज्ञान है।

2.5 भाषा-विज्ञान के अध्ययन के प्रकार

भाषा-विज्ञान का अध्ययन कई दृष्टियों में किया जाता है।यदि हम देखें तो प्रत्येक दृष्टि से किया गया अध्ययन भाषा-विज्ञान के एक नए रूप व नए प्रकार को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है।

1-सामान्य भाषा-विज्ञान

2-वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान

3-ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान

4-तुलनात्मक भाषा-विज्ञान

5-सैद्धान्तिक भाषा-विज्ञान

2.5.1सामान्य भाषा-विज्ञान

सामान्य भाषा-विज्ञान,भाषा-विज्ञान के उस प्रकार को कहते हैं जिसमें किसी एक भाषा विशेष को न लेकर सम्मिलित सभी भाषाएँ होती हैं। उनका अध्ययन भाषा विषयक सामान्य बातों तक ही सीमित रहता है। जैसे- भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई, प्रारम्भ में भाषा का क्या स्वरूप रहा होगा, भाषा में किस प्रकार परिवर्तन व विकास होता है इसके कौन-कौन से कारण हैं,भाषा की क्या विशेषताएं हैं,किस प्रकार से एक भाषा से अनेक भाषाओं की उत्पत्ति हुई। जैसे-हमारी प्रारम्भिक भाषा संस्कृत से हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली, नेपाली आदि सैकड़ों बोलियां बन गई।ये सभी बातें सामान्य भाषा-विज्ञान के अर्न्तगत आती हैं।

2.5.2 वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान

वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान के अर्न्तगत किसी एक विशिष्ट भाषा के किसी एक ही काल के स्वरूप का वर्णन किया जाता है।इसके अर्न्तगत विभिन्न कालों की भाषाओं का अध्ययन सम्भव नहीं होता है। इसके अर्न्तगत वाक्य, रूप, ध्वनि आदि का वर्णन आता है।यदि भाषा का पुरातन साहित्य विद्यमान है तो यह भाषा भूतकाल की भी हो सकती है।यदि देखा जाय तो संस्कृत, गीक्र, अंग्रेजी का पुरातन साहित्य विद्यमान है इनका वर्णनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है।यदि देखा जाय तो

पाणिनी का व्याकरण इस दृष्टि से उल्लेखनीय है पाणिनी व्याकरण में पाणिनी ने संस्कृत का जो विश्लेषणात्मक रूप प्रस्तुत किया है उसकी पाश्चात्य विद्वानों ने भी प्रशंसा की है। वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान का इससे अच्छा उदाहरण अन्य कहीं नहीं मिल सकता है।

2.5.3 ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान

ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत भाषा के क्रमिक विकास अध्ययन किया जाता है। इसमें प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक का क्रमिक विकास प्रस्तुत किया जाता है। भाषा का प्राचीन रूप क्या था? मध्य युग की भाषा में कैसे परिवर्तन हुआ था व भाषा का वर्तमान रूप क्या है? इसमें कम से कम दो कालों का क्रमिक विकास दिखाना अति आवश्यक होता है। जैसे- वैदिक संस्कृति से लेकर पालि, प्राकृत व अपभ्रंश आदि के रूप में परिवर्तन के साथ-साथ आधुनिक समय में हिन्दी भाषा का क्रमिक विकास ऐतिहासिक भाषा का विषय बनता है।

किस प्रकार से ध्वनि, पद और वाक्यों में विकार आया? रूप व ध्वनि में परिवर्तन किस काल में हुआ? विकास के पश्चात् उसका वर्तमान रूप क्या बना? आदि का अध्ययन ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार से यदि हम देखें तो ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान में विभिन्न कालों के रूपों का अध्ययन किया जाता है।

2.5.4 तुलनात्मक भाषा-विज्ञान

तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का प्रारम्भ मूलतः 18वीं-19वीं सदी में हुआ इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। नयी और पुरानी भाषा की तुलना किसी काल विशेष के आधार पर की जाती है। जो भाषाएं लुप्त हो गयी हैं उनके अनुसंधान में भी यह सहायक होता है। इसके अन्तर्गत किसी भी भाषा की ध्वनियों,पदों और वाक्यों की सभी प्रकार से तुलना की जाती है।

वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धतियों का इसमें समावेश होता है। इसके अध्ययन में ऐतिहासिक पद्धति भी भाषा के रूपों के स्वरूप को बतलाकर पूर्ण रूप से सहयोग करती है व भाषा की तुलना वर्णनात्मक पद्धति के आधार पर होती है। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान में वर्णनात्मक व ऐतिहासिक दोनों पद्धतियां पूर्ण रूप से सहयोगी हैं । देखा जाय तो संस्कृत, लैटिन व ग्रीक भाषाओं की तुलना से ही तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का जन्म हुआ।

2.5.5सैद्धान्तिक भाषा-विज्ञान

सैद्धान्तिक भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत भाषा की प्रकृति ,संरचना,उत्पत्ति व विकास आदि का सैद्धान्तिक अध्ययन करते हैं। इसके अन्तर्गत भाषा विषयक विभिन्न सिद्धान्तों का निर्धारण होता है। वस्तुतः यदि देखा जाय तो भाषा-विज्ञान भाषा के अध्ययन विश्लेषण का विज्ञान है। इसकी सहायता से भाषा की आंतरिक प्रकृति पर प्रकाश डाला जा सकता है, साथ ही साथ भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों का निश्चित करता है इस तरह से यह सिद्धान्त परक है।

2.6 भाषा-विज्ञान के अंग

भाषा का सर्वांगीण अध्ययन करना ही भाषा-विज्ञान का उद्देश्य है। भाषा-विज्ञान में भाषा से सम्बन्धित सभी विषय आते हैं इन्हें हम भाषा के अध्ययन के विभाग भी कह सकते हैं। मुख्य रूप से तो भाषा-विज्ञान के चार घटक हैं किन्तु भाषा-विज्ञान इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य विषयों पर भी पर भी विवेचना की गई है वे गौण अंग हैं। इस प्रकार से हम भाषा-विज्ञान के अंगों को दो भागों में बांट सकते हैं।

1-मुख्य अंग,तथा 2-गौण अंग।

2.6.1ध्वनि विज्ञान

वाक्य की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है। यदि शब्दों का विश्लेषण करें तो हम ध्वनि पर पहुँचते हैं। भाषा का आरम्भ ध्वनि से होता है। ध्वनि को हम स्वन (फोन) नाम से भी जानते हैं या हम कह सकते हैं कि यह ध्वनि का दूसरा नाम है।ध्वनि को मिलाकर शब्द या पद बनाये जाते हैं। ध्वनि विज्ञान के अन्तर्गत हम ध्वनियों का अध्ययन करते हैं। ध्वनियों के दो रूप हैं-

क- सैद्धान्तिक-सैद्धान्तिक के अन्तर्गत ध्वनियों के उच्चारण अवयवों के विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है । इसके साथ ही साथ स्वर एवं व्यंजनों का वर्गीकरण एवं उनमें अन्तर आदि पर विचार किया जाता है ।

ख- भाषा-सापेक्ष-भाषा -सापेक्ष के अन्तर्गत भाषा विशेष की ध्वनियों का वर्गीकरण एवं भाषा-विशेष में प्रयुक्त ध्वनियों की व्यवस्था आदि का विवेचन किया जाता है।

2.6.2 पद विज्ञान

पद-विज्ञान को रूप विज्ञान भी कहते हैं। पद-विज्ञान के अन्तर्गत पदों अर्थात रूपों का अध्ययन करते हैं। ध्वनियों के मिलने से पद बनाये जाते हैं। पद विज्ञान हमें यह बताता है कि किस प्रकार पदों का निर्माण होता है? किस आधार पर पदों का विभाजन होता है?पुरूष,वचन,लिंग,विभक्ति,काल,प्रत्यय

आदि तत्व क्या हैं? इन सभी का विवेचन किया जाता है।

2.6.3 वाक्य विज्ञान

वाक्य विज्ञान भाषा विज्ञान की वह शाखा है जिसमें वाक्यों का अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है। विभिन्न ध्वनियों के मिलने से जिस प्रकार पद या रूप बनता है उसी प्रकार विभिन्न पदों या रूपों के मिलने से वाक्य बनता है।इसके अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि वाक्य की रचना किस प्रकार होती है? वाक्य के कर्ता, क्रिया, कर्म आदि का क्या स्थान है? वाक्य के कितने भेद हैं?

वाक्य विज्ञान को वाक्य विचार भी कहा जाता है। वाक्य विज्ञान को तीन भागों में विभक्त किया गया है।

1-वर्णनात्मक वाक्य विज्ञान

2-ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान

3-तुलनात्मक वाक्य विज्ञान

2.6.4 अर्थ विज्ञान

अर्थ विज्ञान को अर्थ विचार भी कहते हैं। बिना अर्थ के भाषा का कोई महत्व नहीं है। जिस प्रकार से आत्मा मनुष्य का सार है उसी प्रकार भाषा की आत्मा अर्थ है।इसके अन्तर्गत इस विषय पर विचार किया जाता है कि अर्थ क्या है? अर्थ को कैसे निर्धारित करते हैं? शब्द और अर्थ का क्या सम्बन्ध है? अर्थ कितने प्रकार का होता है? किन कारणों से अर्थ में परिवर्तन होते हैं? आदि का अध्ययन अर्थ विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। अर्थ विज्ञान के चार भेद हैं- एककालिक,व्यतिरेकी, काल-क्रमिक,तथा तुलनात्मक।

गौण अंग

मुख्य अंग के अतिरिक्त भाषा के गौण अंग भी हैं इनका अपना अलग महत्व है। प्रमुख गौण अंग निम्न हैं-

2.6.5 भाषा की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई? उत्पत्ति के विषय में भाषाशास्त्रियों का क्या मत है? किस प्रकार भाषा में परिवर्तन या विकास हुआ? इन सभी बातों पर विचार किया जाता है।

2.6.6 कोश विज्ञान

इस विज्ञान के अन्तर्गत कोश रचना का प्रकार बताया जाता है। कैसे शब्दों की व्युत्पत्ति हुई? किस

प्रकार से शब्दों के अर्थ का निर्धारण किया जाता है? शब्दों का किन अर्थों में प्रयोग होता है? कोश विज्ञान के अन्तर्गत व्यत्पत्ति शास्त्र भी आता है। निघण्टु नामक ग्रंथ इसका प्राचीन उदाहरण है।

2.6.7 भाषिक भूगोल

भाषिक भूगोल के अन्तर्गत भौगोलिक दृष्टि से भाषा का अध्ययन किया जाता है। संसार के विभिन्न क्षेत्रों में कौन-कौन सी भाषाएं बोली जाती हैं? भाषा का क्षेत्र कितना व्याप्त है? भाषा की कितनी बोलियां व उपबोलियां हैं? इसी का अध्ययन किया जाता है।

2.6.8 लिपि विज्ञान

लिपि को भी भाषा-विज्ञान का अंग माना जाता है, इसके अन्तर्गत लिपि की उत्पत्ति,उसके विकास व उसकी उपयोगिता पर विवेचन किया जाता है। किसी भी भाषा का अध्ययन लिपि के आधार पर किया जाता है।

बोध प्रश्न

1-रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये-

(क) भाषा का.............अध्ययन करना ही भाषा विज्ञान का उद्देश्य है।

(ख) भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को ही ....कहते हैं।

(ग) वाक्य की सबसे छोटी इकाई............है।

(घ) भाषिक भूगोल के अन्तर्गत...................दृष्टि से भाषा का अध्ययन किया जाता है।

2- नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न लगाइये-

(क) तुलनात्मक भाषा विज्ञान का प्रारम्भ मूलतः 18वीं-19वीं शती में हुआ। ( )

(ख) पद विज्ञान को रूप विज्ञान नहीं कहते हैं। ( )

(ग) ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अन्तर्गत भाषा के क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है। ( )

(घ) लिपि को भाषा विज्ञान का अंग नहीं माना जाता है। ( )

2 .7 भाषा-विज्ञान का अन्य विषयों से सम्बन्ध

भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध भाषा से है। भाषा-विज्ञान का मानव जीवन से सम्बन्धित विज्ञानों और शास्त्रों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। देखा जाय तो मानव ने अपने अध्ययन की सुविधा के अनुसार ज्ञान को कुछ क्षेत्रों में बाँटा है । इनको अलग-अलग शास्त्रों व

विज्ञानों का नाम दिया है।

भाषा-विज्ञान सम्बन्धी तात्विक ज्ञान के लिए इन विज्ञानों और शास्त्रों की सहायता लेनी पड़ती है

संक्षेप में कुछ विवेचन प्रस्तुत किये जा रहे हैं।जिनका भाषा-विज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

2.7.1 भाषा-विज्ञान और व्याकरण

सामान्य भाषा में व्याकरण का अर्थ है विवेचन। व्याकरण की उत्पत्ति व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते शब्दाः, प्रकृतिप्रत्ययो वा, येन तद् व्याकरणम् से हुई। भाषा-विज्ञान और व्याकरण में कुछ समानताओं के साथ-साथ कुछ अन्तर भी है। दोनों का ही भाषा के अध्ययन से घनिष्ट सम्बन्ध है।दोनों भाषा के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश का भी प्रतिपादन करते हैं।भाषा में कहां पर कैसा प्रयोग होना चाहिए, प्रयोग शुद्ध है या अशुद्ध इस बात का निर्धारण व्याकरण करता है।भाषा-विज्ञान केवल इस बात को जानना चाहता है कि कब, कहां पर कैसा प्रयोग होता है।

समानताएं होने के बाद भी दोनों में कुछ अन्तर है। भाषा-विज्ञान का क्षेत्र व्यापक है व व्याकरण का क्षेत्र सीमित है।व्याकरण का सम्बन्ध केवल एक ही भाषा से होता है, इसके विपरीत भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध अनेक भाषाओं से होता है।यदि अध्ययन किया जाय तो विश्व की समस्त भाषाओं से भाषा-विज्ञान का सम्बन्ध है। अतः व्याकरण को अंग व भाषा-विज्ञान को अंगी माना जाता है।भाषा का नियम व्याकरण प्रस्तुत करता है और भाषा-विज्ञान उस नियम की व्याख्या करता है।

2.7.2भाषा-विज्ञान और साहित्य

भाषा-विज्ञान और साहित्य दोनों एक दूसरे के उपकारक हैं। भाषा-विज्ञान के प्रमुख दो अंग तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान पूर्णरूपेण साहित्य पर निर्भर है। यदि देखा जाय तो भाषा विज्ञान की उत्पत्ति संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के अध्ययन के फलस्वरूप हुई। भाषा विज्ञान एक विज्ञान व साहित्य कला है। जिस प्रकार भाषा विज्ञान का सम्बन्ध मस्तिष्क से है उसी प्रकार साहित्य का हृदय से है । भाषा विज्ञान के अन्तर्गत भाषाओं, बोलियों व जनसमूह में प्रचलित भाषा का ही अध्ययन होता है साहित्य में भाषाओं का सग्रह होता है इस प्र्रकार यदि देखें तो भाषा विज्ञान का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। साहित्य में प्राचीन भाषाओं के रूपों को सुरक्षित कर भाषा विज्ञान के अध्ययन सम्बन्धि सामग्री प्रदान की जाती है। साहित्य के बीना भाषा विज्ञान का विकास सम्भव नही है इस प्रकार भाषा विज्ञान और साहित्य एक दूसरे के सहायक हैं ।

2.7.3 भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान

भाषा विज्ञान और मनोविज्ञान का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। भाषा विज्ञान के अन्तर्गत भाषा का

अध्ययन किया जाता है और मनोविज्ञान के अन्तर्गत मन का।भाषा विचारों या भावों का प्रकट करती है भाव या विचारों का सम्बन्ध मन से है। जैसा हम सोचते हैं वैसा ही बोलते हैं जो मन में आता है उसी को प्रकट करते हैं। इसका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क तथा मनोविज्ञान से है। इस तरह से यदि देखा जाय तो भाषा की आन्तरिक समस्याओं को सुलझाने में मनोविज्ञान भाषा विज्ञान की सहायता करता है ।

मनोविज्ञान की आवश्यकता ध्वनि विज्ञान और अर्थविज्ञान में भी विशेष रूप से पड़ती है जैसे हमारे मन में विचार उत्पन्न होगें वैसी ही भाषा का हम उच्चारण करेंगे। इस प्रकार मनोविज्ञान ध्वनि विज्ञान में कारण रहता है। इसी प्रकार अर्थ परिवर्तन में भी मनोविज्ञान सहायक है। जैसे-एक ही शब्द के अनेकार्थक शब्द आदि। दूसरी ओर यदि हम देखें तो भाषा विज्ञान भी मनोविज्ञान का उपकारक है। मानसिक रोगों का उपचार भाषा विज्ञान के द्वारा किया जाता है।

2.7.4 भाषा-विज्ञान और भौतिक विज्ञान

भाषा विज्ञान के अध्ययन में भौतिक विज्ञान एक अत्यन्त सहायक अंग है। विज्ञान का भाषा विज्ञान से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। मनुष्य जब कुछ बोलता है वह ध्वनि श्रोता के तक कैसे पहुँचती है और श्रोता किस प्रकार से उस ध्वनि को अपनाता है। इन सभी बातों का अध्ययन भौतिकी के अर्न्तगत होता है।

ध्वनि-तरंग एवं कम्पन आदि का विस्तृत रूप से भौतिक विज्ञान में अध्ययन किया जाता है। ध्वनि विज्ञान जो कि भाषा विज्ञान का एक प्रमुख अंग है वह भौतिकी पर निर्भर है। वह हमें बतलाता है कि ईथर नामक तत्व जो आकाश में व्याप्त है वह ध्वनि तरंगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजता है। इसी के आधार पर बोलने वाले अर्थात् वक्ता के विचार श्रोता को सुनायी पड़ते हैं।

2.7.5.भाषा विज्ञान और भूगोल

भाषा विज्ञान का भूगोल से अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है सीमा के अनुसार भूगोल भाषाओं के निर्धारण में सहायक है। क्योंकि स्थानभेद के आधार पर भाषा बदल जाती है। कुछ भाषा शास्त्रियों के अनुसार स्थानीय भौगोलिक परिस्थिति का भाषा पर बहुत प्रभाव पड़ता है भौगोलिक प्रभाव के कारण ध्वनि में भी परिवर्तन होता है जिस कारण लोगों के उच्चारण में भी अन्तर पाया जाता है जिस प्रकार से ठंडे से दुर्गम स्थानों में रहने वालों का स्वर अस्पष्ट रहता है इसके विपरित गर्म स्थानों में उच्चारण स्वर में स्पष्टता दिखाई देती है।

दुर्गम व पर्वतीय क्षेत्रों की भाषा में परिवर्तन तेजी से न होकर बहुत देर से होता है, जबकि मैदानी क्षेत्रों की भाषाओं में परिवर्तन तीव्रता से होता है यह भी भौगोलिक कारण है क्योंकि मैदानी भागों में लोगों का सम्पर्क अधिक होता है जिस कारण भाषा में परिवर्तन होता है पर्वतीय क्षेत्रों में दूर-दूर होने के

कारण लोगों का सम्पर्क कम होता है जिस कारण भाषा में परिवर्तन बहुत देर से होता है।

किसी भी भाषा का कम या अधिक विस्तार भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। भूगोल

अर्थविचार में भी भाषा-विज्ञान की सहायता करता है। जैसे-प्राचीन समय में उष्ट्र का अर्थ जंगली भैंसे से था। तदन्तर उष्ट्र को ही लोगों ने ऊँट कहना कैसे प्रारम्भ कर दिया, सैंधव का अर्थ नमक व घोड़ा ही क्यों हुआ, संस्कृत भाषा में कश्मीर का केसर अर्थ कैसे निकला आदि बातों का समाधान करने में भूगोल ही भाषा-विज्ञान की सहायता करता है।

2.7.6 भाषा-विज्ञान और इतिहास

भाषा-विज्ञान और इतिहास का निकटतम सम्बन्ध है। भाषा-विज्ञान के अध्ययन में इतिहास सहायता करता है व इतिहास की सामग्री प्रस्तुत कर भाषा-विज्ञान इतिहास की सहायता करता है। भाषा-विज्ञान की सहायता से ही शिलालेखों, अभिलेखों, सिक्कों, धातुओं की बनी लिपियों आदि का अध्ययन किया जाता है। किस प्रकार से शब्द और अर्थ में परिवर्तन हुआ इस बात की जानकारी भी हमें इतिहास के माध्यम से प्राप्त होती है।

राजनीतिक इतिहास हमें यह बताता है कि विदेशी शब्दों का प्रचलन कहाँ से हुआ। भारत में अंग्रेजी,अरबी,फारसी,तुर्की व पुर्तगाली शब्दों का आगमन कब हुआ यह भी हमें इतिहास ही बताता है।

धार्मिक इतिहास धर्म पर आधारित भाषा से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को सुलझाता है।धर्म के रूप परिवर्तन का भी भाषा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। धार्मिक इतिहास हमारे इस प्रश्न का उत्तर भी देता है कि किस प्रकार मराठी तथा बंगाली में ब्रज भाषा के कुछ अंश आ गये, हिन्दुओं की भाषा संस्कृत युक्त क्यों है, भारत में हिन्दी व उर्दू की समस्या कैसे उत्पन्न हुई।भाषा-विज्ञान के अध्ययन से ही प्राचीन धार्मिक रूप ज्ञात होता है। समाजिक इतिहास के द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि समाज में प्रचलित प्रथाएँ किस प्रकार भाषा को प्रभावित करती हैं। यदि देखा जाय तो भारतीय भाषाओं में माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची के अलावा जीजा-साली, मौसा-मौसी,नाना- नानी आदि शब्दों की बहुलता है। इसके विपरीत विदेशी भाषाओं में इनके लिए अलग-अलग शब्दों का अभाव है।इस प्रकार से यदि देखा जाय तो इतिहास भाषा-विज्ञान का उपकारक है

2.7.7 भाषा-विज्ञान और दर्शन

भाषा-विज्ञान और दर्शन का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन शास्त्र के अन्तर्गत आत्मा, परमात्मा, जीव आदि का अध्ययन होता है।अर्थ विज्ञान जो कि भाषा-विज्ञान का प्रमुख अंग है

उसका दर्शन शास्त्र से विशेष सम्बन्ध है। सर्वप्रथम मींमासकों व दार्शनिकों ने ही शब्द और अर्थ पर चिन्तन अर्थात् विचार किया।उनके अनुसार शब्द क्या है? उसका स्वरूप क्या है? शब्द की कितनी शक्तियां हैं?शब्द व अर्थ का सम्बन्ध है भी या नहीं आदि बातों पर पाश्चात्य व भारतीय दार्शनिकों ने ही सर्वप्रथम विचार किया।

भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय में इसका विकास देखने को मिलता है। अभिहितान्वयवाद, स्फोटवाद व मीमांसकों का शब्द नित्यतावाद दार्शनिक के ही अन्दर आते हैं। अर्थ विज्ञान जो कि भाषा विज्ञान का प्रमुख अंग है कुछ भाषा शास्त्री उसे दर्शन शास्त्र के ही अर्न्तगत मानते हैं।

2.7.9 भाषा-विज्ञान और मानव विज्ञान

भाषा मनुष्य के विकास का प्रतीक है। इस तरह से भाषा विज्ञान व मानव विज्ञान का सम्बन्ध है दोनों ही एक दूसरे के अध्ययन सम्बन्धी सामग्री को प्रस्तुत करते हैं। सभ्यता, विज्ञान व संस्कृति आदि के आधार पर किस प्रकार विकास हुआ इसका विवेचन मानव विज्ञान करता है।

भाषा की उत्पत्ति व उसके प्राचीन रूप आदि के अध्ययन के लिए भाषा को मानव विज्ञान से सहायता लेनी पड़ती है। मानव विज्ञान की सहायता के द्वारा ही भाषा विज्ञान को यह जानकारी प्राप्त होती है कि अशोक के शिलालेख में लिखे देवानां प्रिय का अर्थ अनन्तर में मूर्ख कैसे हो गया? इसी तरह ऋग्वेद में असुर शब्द देव के लिए प्रयुक्त होता था परवर्ती संस्कृत साहित्य में वह राक्षस अर्थ में कैसे प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार भाषा विज्ञान व मानव विज्ञान एक दूसरे के सहायक है

2.7.10 भाषा-विज्ञान और सामाजिक विज्ञान

भाषा विज्ञान व सामाजिक विज्ञान दोनों का सापेक्ष होने के कारण परस्पर सम्बन्ध है। सामाजिक विज्ञान के अर्न्तगत समाज में रहने वाले मानव के आहार व्यवहार, आचार विचार व रीति परम्पराओं का अध्ययन होता है। भाषा सामाजिक वस्तु होने के कारण समाजशास्त्रियों के अध्ययन का विषय बन जाती है। भाषा विज्ञान में सैकड़ों शब्द आचार विचार व रीति रिवाजों के हैं समाज विज्ञान की सहायता से इनकी व्याख्या में सरलता हो जाती है। समाजिक विज्ञान हमें यह बताता है कि किस प्रकार भाषा में विकास और पतन के कारण रूप परिवर्तन होने से अर्थ परिवर्तन हुआ। जैसे- शुक्ल से शुक्ला, द्विवेदी से दुबे त्रिवेदी से तिवारी आदि शब्द। यदि हम दोनों की तुलना करें तो भाषा विज्ञान का क्षेत्र सीमित व सामाजिक विज्ञान का क्षेत्र विस्तृत है क्योंकि भाषा विज्ञान सामाजिक विज्ञान के नियंत्रण में रहता है ।

2.7.11 भाषा-विज्ञान और शरीर विज्ञान

भाषा विज्ञान का आधार ही भाषा है। भाषा मनुष्य के अर्थात् वक्ता के मुख से निकली वह ध्वनि है जो श्रोता के द्वारा ग्रहण की जाती है।इस बात पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि वाग्रिन्द्रिय की

सहायता से वक्ता ने जो कुछ भी कहा वह ध्वनि तरंगों की सहायता से श्रोता तक पहुँचती है। उच्चारण करते समय वायु शरीर के भीतर कैसे चलती है, कैसे स्वर यंत्र प्रभावित होता है आदि के अध्ययन में शरीर विज्ञान भाषा विज्ञान की सहायता करता है।

2.8 भाषा-विज्ञान की उपयोगिता या अध्ययन से लाभ

भाषा विज्ञान एक विज्ञान है। विभिन्न विद्वानों ने इस पर विचार भी किया है। यहाँ पर हम विद्वानों के मतों को आधार बनाते हुए उसकी उपयोगिता अर्थात् अध्ययन से लाभ पर विचार करेंगे-

(1) ज्ञान पिपासा की शान्ति:- भाषा विज्ञान ही एक ऐसा विज्ञान है जो हमारी भाषा विषयक जिज्ञासाओं की तृप्ति करता है। मानव का यही स्वभाव होता है कि वह अपने ज्ञान में निरन्तर वृद्धि करता रहे यही उसका कर्तव्य भी है। भाषा हमारे जीवन का अभिन्न अंग होने के कारण हमें उसके विषय में पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। ज्ञान पिपासा की शान्ति के द्वारा मनुष्य का बौद्धिक और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

(2) प्राचीन संस्कृति का ज्ञान:- प्राचीन सभ्यता व संस्कृति का ज्ञान हमारे लिए अति आवश्यक है। प्राचीन संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने में भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है। सभी जातियों की संस्कृतियों का बोध हमें भाषा विज्ञान के द्वारा ही होता है।

(3) विश्व बन्धुत्व की भावना:-भाषा विज्ञान हमें विश्व की प्रमुख भाषाओं का ज्ञान कराता है व हमारे मन में व्याप्त संकीर्णता की भावना को दूर करता है। अनेक भाषाओं के आपस में सम्बन्ध का ज्ञान होने से हमारे मन में आत्मीयता की अनुभूति होती है। इस प्रकार विश्व बन्धुत्व की भावना समस्त विश्व में फैलती है।

(4) भाषा के अध्ययन में सहायक:- भाषा के अध्ययन का विज्ञान ही भाषा विज्ञान है। ध्वनियों, प्रकृति, प्रत्यय, वर्ण आदि का ज्ञान हमें इसी के द्वारा होता है इसके साथ ही साथ उच्चारण की शुद्धता का बोध भी यह कराता है।

(5) साहित्य के ज्ञान में सहायक:-यदि देखा जाय तो साहित्य के आधार ही भाषा विज्ञान हैं। यह किसी भी भाषा के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंगों की विवेचना करता है। यह भाषा के अर्थ विज्ञान व अर्थ विकास को जानने में सहायक होता है।

(6) वेदार्थ ज्ञान में सहायक:- भाषा विज्ञान वेदों के अर्थ ज्ञान में सहायता करता है। लैटिन, ग्रीक, आदि भाषाओं के अध्ययन में वैदिक शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए भाषा विज्ञान कीतुलनात्मक

पद्धति की सहायता ली जाती है।

(7) अनुवाद व पाठ संशोधन आदि में संशोधन:-भाषा विज्ञान विभिन्न भाषाओं अर्थात् एक भाषा का दूसरी भाषा में अनुवाद करने में सहायता करता है।इसके साथ ही साथ यह प्राचीन ग्रंथों के पाठ निर्णय व अर्थ निर्णय में सहायक सिद्ध होता है।

बोध-प्रश्न

3- निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिये-

(1) भाषा विज्ञान क्या है?

(क) व्याकरण (ग) विज्ञान

(ख) साहित्य (घ) कला

(2) मनोविज्ञान का सम्बन्ध है।

(क) भावों से (ग) बोलियों से

(ख) मस्तिष्क से (घ) हृदय से

(3) भाषा विज्ञान का क्षेत्र है।

(क) सीमित (ग) व्यापक

(ख) विपरीत (घ) शुद्ध

4- नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में तथा गलत वाक्यों के सामने का चिह्न लगाइये-

(क) भाषा विज्ञान ही एक ऐसा विज्ञान हैजो हमारी भाषा विषयक जिज्ञासाओं की तृप्ति करता है ( )

(ख) दुर्गम व पर्वतीय क्षेत्रों की भाषा में परिवर्तन तेजी से होता है। ( )

(ग) प्राचीन सभ्यता का ज्ञान हमारे लिए अति आवश्यक है। ( )

(घ) भौगोलिक परिस्थिति का भाषा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ( )

2.9 सारांश

मनुष्य इस संसार का सर्वोत्तम प्राणी माना जाता है, वह अपने ज्ञान विज्ञान के द्वारा ही सभी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित करता है। भाषा मनुष्य की प्रगति में विशेष रूप से सहायक होती है।इस इकाई में आप विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाओं से परिचित हुए, व साथ ही साथ आपने भाषा विज्ञान के अध्ययन के प्रकारों व उसके अंगों के विषय में जानकारी प्राप्त की। इससे तो आप परिचित हैं कि भाषा विज्ञान एक विज्ञान है किन्तु भाषा विज्ञान का किसी न किसी रूप में अन्य विज्ञानों व शास्त्रों से सम्बन्ध है।भाषा विज्ञान को इन विज्ञानों की सहायता लेनी पड़ती है। मनुष्य अपने ज्ञान में

निरन्तर वृद्धि करना चाहता है, क्योंकि भाषा हमारे जीवन का अभिन्न अंग है उसके विषय में पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है इसमें भाषा विज्ञान हमारी सहायता करता है और साथ ही साथ भाषा विषयक जिज्ञासाओं की तृप्ति करता है।

2.10 शब्दावली

विशिष्ट - विशेष प्रकार
पुरातन - पुराना(प्राचीन)
लुप्त - समाप्त होना
सर्वांगीण - सम्पूर्ण विकास
सूक्ष्माति सूक्ष्म - छोटे से छोटा
घनिष्ठ - गहरा
ईथर - ऐसा पदार्थ जो ध्वनि तरंगों को एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजता है।
श्रोता - सुनने वाला
वक्ता - बोलने वाला

2.11 बोध-प्रश्नों के उत्तर

1- (क) सर्वांगीण (ख) भाषा विज्ञान
(ग) ध्वनि (घ) भौगोलिक

2- (क) (ख) (ग) (ख)

3- (1) गः- विज्ञान (2) खः- मस्तिष्क (3) गः- व्यापक

4- (क) (ख) (ग) (ख)

2.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी - भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी-221 001

(2) डॉ0 जितेन्द्र वत्स - भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा निर्मल पब्लिकेशन्स

। -139 गली न. 3, कबीर नगर शाहदरा दिल्ली-94

(3) डॉ0 भोलानाथ तिवारी - भाषा विज्ञान किताब महल, 22- । सरोजनी नायडू मार्ग,इलाहाबाद

(4) डॉ0 कर्णसिंह - भाषा विज्ञान प्रकाशक रतिराम शास्त्री,अध्यक्ष साहित्य भण्डार सुभाष बाजार, मेरठ-2

2.13 उपयोगी पुस्तकें

(1) आधुनिक भाषा विज्ञान - डॉ0 राममणि शर्मा

(2) भाषा विज्ञान - डॉ0 श्याम सुन्दर दास

(3) भाषा और भाषाविज्ञान - प्रो0 रामाश्रय मिश्र

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

1-विद्वानों के मतों के अनुसार भाषा विज्ञान की परिभाषा को समझाते हुए,यह बताइये कि भाषा विज्ञान विज्ञान है या कला।

2- भाषा विज्ञान का अन्य शास्त्रों से सम्बन्ध समझाइये ।

3- भाषा विज्ञान के अंगों का वर्णन कीजिये ।

इकाई 3 . संस्कृत एवं प्रमुख भारोपीय भाषायें

इकाई का रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

भाषा, विचार और अनुभव का संश्लेष है। काल के विस्तार में भाषा का अजश्रम विकसनशील रहता है। अपने कालिदास अथवा पश्चिम के शेक्सपीयर की रचनाओं का अर्थ किसी एक बिन्दु पर स्थिर नहीं, बल्कि अनेक देशों और कालों के विराट समागम से बराबर नयी छवियाँ धारण करता है। भाषा मानव हृदय की कुंजी है। यह किसी राष्ट्र के संगठन के लिये परमावश्यक साधनों में से एक है। विश्व-मानवता का मानसिक संघटन भी भाषा के ही आधार पर किया जाता है। भाषा अनुभूति की अनुवंधी है। भाषा में यह किसी न किसी रूप में अवश्य सक्रिय रहती है। भाषा में वृत्त की लीनता और अनुभूति की गति होती है। एक भाषा का व्यवहार करने वाले लोग उस भाषा के अनेक रूपों के समुच्चय से एक भाषा की इकाई की संरचना करते है। उनरूपों में पार्थक्य होते हुए भी, विचार-विनिमय की सम्भावना अधिक रहती है। विचार विनिमय की यह संभावना एक भाषागत एकता का निर्माण करती है।

इतने बड़े संसार में कुल कितनी भाषाओं का प्रयोग होता होगा। इस विचारणीय विषय पर विद्वानों ने शोध के उपरान्त इनकी संख्या-2796 बताई है। इनमें प्रमुख भाषाओं में से एक भाषा है भारोपीय। भारत से लेकर प्रायः पूरे युरोप तक बोले जाने के कारण इसका नामकरण भारोपीय भाषा के रूप में किया जाता है। इस भाषा का क्षेत्र भारत से लेकर ईरान और आर्मेनिया होता हुआ बीच के कुछ भागों को छोड़कर ब्रिटेन और ब्रिटिश द्वीपों तक फैला हुआ है। इसका नामकरण भी विवादस्पद रहा है पर अन्त में इसका निकर्षतः भारोपीय भाषा नाम ही रखा गया।

इस इकाई में आप भारोपीय भाषा के क्षेत्र, नामकरण, इस भाषा की ध्वनियाँ, इनका व्याकरण, संस्कृत के साथ सम्बन्ध, भारोपीय भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव, विशेषता आदि विषयों के बारे में अध्ययन कर सकेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप संस्कृत एवं भारोपीय भाषा से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर सकेगें।

- भारोपीय भाषा से परिचित हो सकेंगे।
- भारोपीय भाषा के क्षेत्र विशेष से परिचित हो सकेंगे।
- भारोपीय भाषा का संस्कृत के साथ सम्बन्ध के बारे में जान सकेगें।
- भारोपीय भाषा के विविध विषयों की व्याख्या कर सकेगें।

3.3 भारोपीय भाषा का नामकरण

1. इंडोजर्मनिक- सर्वप्रथम इन्हें इंडो जर्मनिक कहा गया क्योंकि इसके पूर्वी छोर पर भारतीय और जर्मनिक भाषाएं हैं, किन्तु उनके पश्चिम भी केल्टिक शाखा है। अतः यह उपर्युक्त न हो सका।
2. इंडो-केल्टिक- यह नाम कुछ दिनों तक आस्तितव में रहा परन्तु इसमें केवल दोनों छोर ही थे अतः यह निश्चित चिन्ह खड़ा नहीं कर सका।
3.आर्य भाषाकुछ विद्वानों ने इसे आर्यो के द्वारा बोले जाने के कारण नामकरण किया किन्तु 'आर्य' शब्द का प्रयोग भारत एवं ईरान में ही विशेष प्रचलित था। अतः आर्य भारत-ईरानी भाषा विशेष के लिए ही प्रयुक्त होते है।
4.संस्कृत भाषा- इस में अपेक्षाकृत संस्कृत का महत्व भाषा अधिक था। विद्वानों ने इसी से सभी भाषाओं की निष्पति माना है, परन्तु इसे पूर्ण मान्यता नहीं मिली।
5.काकेशियन भाषा- इसे पूर्ण मान्यता न मिलने के कारण स्वीकार नहीं किया गया।
6. जफेटिक भाषा- कुछ विद्वानों ने जेमेटिक और हेमेटिक की वजह से इसे यह नाम दिया। बाइबिल में इन आधारों पर मनुष्य जाती का वर्गीकरण किया जो निराधार है। अतः यह मान्य न हो सका।
7.भारोपीय भाषा- यह नाम भी पूर्णतः संतोषजनक नहीं है। इसका आधार भौगोलिक है। क्योंकि इसकी शाखाएं भारत से लेकर यूरोप तक फैली है। परन्तु कोई अन्य उपयोगी न होने के कारण इसको सर्वमान्य रखा है।

डॉ0 भोलानाथ तिवारी ने अपने ग्रन्थ भाषा-विज्ञान में भाषा वैज्ञानिकों के तुलनात्मक आधार को मानते हुए कहा है कि - ''भाषा वैज्ञानिकों ने तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर मूल भारोपीय या भारत- हित्ती के एक शब्द श्पतवेष् का पुनर्निर्माण किया था और उन मूल लोगों को भी 'विरोस्' शब्द से पुकारा था। यदी हम उन मूल लोगों को 'विरोस्' कह रहे है तो उसी आधार पर इस भाषा को 'विरोस् भाषा' के रूप में प्रयोग कर सकते है।''

3.9 संस्कृत का तत्कालीन अन्योन्य प्रभाव

3.9.1 संस्कृत तथा भारत-ईरानी

संस्कृत भाषा आर्यों की मूल भाषा के रूप में उदित हुई। प्राचीन आर्यों की भाषा मूलतः दो रूपों वैदिक तथा लौकिक संस्कृत थी। इसलिए यहाँ पर मूल रूप से केवल ईरानी भाषा पर प्रभाव देखा जाएगा। इस प्राचीन ईरानी भाषा तथा संस्कृत वैदिक भाषा के सम्बन्ध इतने घनिष्ठ है कि एक बिना अन्य का अध्ययन संतोष पूर्ण नहीं किया जा सकता। व्याकरण की दृष्टि से इन में बहुत कम भेद पाया जाता है। प्राचीनतम स्थिति में प्रमुख भेद कतिपय विशिष्ट एवं स्पष्टतः नियत ध्वन्यात्मक परिवर्तनों में

पाया जाता है, जिन्होंने एक ओर ईरानी भाषा तथा दूसरी ओर भारतीय आर्य भाषा को प्रभावित किया है। अवेस्ता के प्राचीनतम भाग में ऐसे पद्य ढूँढ लेना सम्भव है, जो किन्ही निश्चित नियमों के आधार पर किए गये केवल परिवर्तनों के द्वारा सुस्पष्ट संस्कृत के रूप में परिवर्तित किए जा सकते है। उदाहरणार्थ -

संस्कृत	अवेस्ता	पुरानी फारसी
सेना	हएना	हइना
श्रृष्टि	अर्शित	अर्शित
असुर	अहुर	
अर्यमन्	अइर्ययम्	
अपाम्नपात्	अपँम् नपात्	
अथर्वन्	अथ्रउर्वन्	
यज्ञ	यस्न	
मित्र	मिग्न	

इस क्षेत्र में जरथुस्त्र के नाम से सम्बद्ध धार्मिक परिवर्तनों ने ईरानी पक्ष में कतिपय शब्दों के अर्थो को परिवर्तित कर दिया है । उदाहरणार्थ-दएव - दइव, जो संस्कृत में देव-देवता अर्थ में दैत्य का अर्थ वहन करता है ।

3.9.2. आदिम भारोपीय भाषा

भारतीय आर्य भाषायें समग्र रूप से भारोपीय परिवार की शाखा के रूप में संकलित होती है। भारोपिय परिवार की विभिन्न भाषाओं के ऐतिहासिक सम्बन्ध में गवेषणा अठारहवीं शताब्दी के अन्त में युरोपीय विद्वानों द्वारा की गई संस्कृत भाषा तथा साहित्य की गवेषणा का सीधाफल है। इन भाषाओं की मूल जननी (आदिमभाषा) की प्रमुख रूपों की खोज की जा चुकी है। ये भारोपीय भाषाएं इस प्रमुख शाखाओं में विभक्त है जो इस प्रकार हैं -

1. आर्य तथा भारत-ईरानी,

2. वाल्टिक तथा स्लाबोनिक,

3. आर्मेनिक,

4. अल्वेनियम, 5. ग्रीक, 6. लैटिन, 7. केल्टिक, 8. जर्मन, तोखारी, 10. हित्ती ।

उपर्युक्त भाषाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य भाषाऐं जो भारोपीय परिवार को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण थी तथा जिनपर संस्कृत का प्रभाव था इस प्रकार है।

1. थ्रेसियम यह एक सतम् भाषा थी, जो मेसिडोनिया की सीमा से लेकर दक्षिणी रूस तक की सीमा तक फैली थी।
2. फ्रीजियम यह सतम् भाषा थी। ई0पू0 12वीं शताब्दी के लगभग एशिया माइनर में प्रचलित थी।
3. इलिरियन दक्षिण- इतावली अंकुर मेसौपियन के साथ यह आधुनिक अल्वेनियम की जननी है।
4. ओस्को उम्ब्रियन - लैटिन भाषा से घनिष्ट तथा सम्बन्ध, इतावली विभाषाऐं, जिन्हें उसी के साथ इलैटिक शाखा में रखा जाता है।
5. उत्तर-पूर्वी इटली भाषा वेनेटिक जो पश्चिमी भारोपीय वर्ग की कैन्तुम शाखा में रखा गया था।
6. एशिया माइनर की प्राचीन भाषा यह हित्ती के साथ मिलकर एक विशिष्ट वर्ग की रचना करती थी। हिन्दी किलाक्षर अभिलेखों में लूवियन तथा पैलेयन दो भाषाओं का संकेत मिलता है।

ये सभी भाषाऐं एक मूल भाषा के ही रूप के अनेक अंग के रूप में विकसित है। उदाहरणार्थ- भारत ईरानी लोगों ने निर्यात के समय अर्थात् 2000 ई0पू0 के लगभग यूरोप छोड़ा । तो वे अपने साथ उस यूरोपीय भाषा को लेकर नहीं चले थे। जो बाद में चलकर भारत ईरानी भाषा के रूप में परिवर्तित हुई, किन्तु वे उस भाषा को लेकर चले थे। जिसका हम पुनर्निर्माण कर सके। जो सिद्धान्त भारत-ईरानी भाषा के साथ लागू होता है। वहीं अन्य शाखाओं के साथ भी लागू होते है।

3.9.3 भारत- ईरानी तथा वाल्तो-स्लावी

भारत ईरानी से इतर अन्य सतम् भाषाऐं केन्तुम भाषाओं में से अधिकांश की अपेक्षा अधिक परवर्ती काल से ज्ञात है। इसके साथ ही सतम् वर्ग में निश्चित रूप में पायी जाने वाली कतिपय शाखाऐं- उदाहरणार्थ थ्रोयसन कुछ चिन्हों को छोड़कर लुप्त हो गयी है। एक समय प्राचीन भारत- ईरानी तथा भारो0 विभाषाओं में विशिष्ट सम्बन्ध था, जिनके बाद वाल्ती तथा स्लावी भाषाऐं विकसित हुईव्याकरण की दृष्टि से भारत-ईरानी तथा वाल्ती-स्लावी में कतिपय समान विशेषताऐं उद्धृत की जा सकती है यद्यपि इनमें कतिपय विरोध भी पाये जाते है। उदाहरणार्थ-

1. सुप् विभक्ति

(क) ऋकारान्त शब्दों में के कर्ता कारक रूपों में 'र' का अभाव संस्कृत- माता, स्वसा, वहिनः प्रा0रला0 मति, लिपु0 मोते, सेसुओ ।

(ख) केवल इन्हीं दोनों वर्गो में अधिकरण कारक बहुवचन में 'सु' विभक्ति चिन्ह पाया जाता है।

संस्कृत- वृकेष प्रा0स्ला0 - ब्लुचेछु।

2. सर्वनाम तथा क्रिया विशेषण -

(क) पुरूषवाचक सर्वनामों के रूपों में विशेषता उदाहरणार्थकर्ता कारक ए0व0 में आम् का प्रयोग सं0 अहम् प्रा0स्ला0 अजु, सानुनासिक कर्मकारक रूप सं0 'माम्' प्रा0स्ला0 'में'

(ख) कतिपय स्थितियों में निर्देशात्मक सर्वनाम आदि के विस्तृत प्रातिपदिक का प्रयोग उदाहरणार्थ- सर्वनाम ए0व0-तस्मैः प्रा0स्ला0-तोमु

(ग) प्रश्नवाचक सर्वनाम में कि प्रातिपादिक के विरूद्ध का प्रातिपदिक का प्रयोग।

3. क्रिया-

क्रिया रूपों में भारोपीय तथा वाल्तो - स्लावी में समान रूप से खास विशेषताऐं विशेष स्पष्ट नहीं हैं लेकिन कुछ स्थान पर दिखाई देता है।

(क)- स्-लुङ् के रूपों में समानता, उदाहणर्थ- धातु में वृद्धि, वेसु तथा उत्तम पुरूष एक वचन में -आम् विभक्ति चिन्ह।

(ख)- स्या- वाले भविष्यत् कालिक रूप निश्चित रूप से केवल भारत- आर्य तथा लिथुआनी में ही पाये जाते है।

ग)- दोनों में णिजन्त प्रक्रिया के रूप अच्छी तरह विकसित है जिनके कई समान रूप देखे जा सकते है। स0-बोधयति, प्रा0स्ला0-बुदिती।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य समानताऐं भी द्रष्टव्य है-

संस्कृत	**प्राचीन**	**स्लावी**
सत्य	शुयि	
	कृष्ण	किर्स्नन्
	गिरि	गोर
	तुच्छय	तुश्ति
	प्रुष्	प्रुस्नोति

अंगार	ओग्लि
ब्रध्न	ब्रोनु
व्रत	रोत
हवते	जोवेते (बुलाता है)
श्वित	स्वितेति (चमकना)

3.9.4 भारत-ईरानी तथा फिन्नो उग्री

भारत - ईरानी तथा अभारोपीय भाषाओं के पड़ोसी परिवार फिन्नो-उग्री के परस्पर सम्बन्ध के प्रमाण उपलब्ध है। इस परवर्ती परिवार में फिनिश, एस्थोनियन तथा हंगेरियन ये तीन यूरोपीय भाषाएं पायी जाती है, जिन्होंने साहित्यिक भाषाओं का स्तर प्राप्त कर लिया है अल्प संख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली कतिपय छोटी भाषाएं भी सम्मिलित है। यथा- लेप, मोर्द्विन, चैरेमिस्, ओरियन, वोत्यक्, बोगुल, ओस्त्यक्।

जहाँ तक फिन्नो- उग्री के साथ प्राचीन भारत- ईरानी के सम्पर्क का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में अधिक प्रमाण उपलब्ध हैं तथा उनका विश्लेषण भी सरल है। उदाहरणार्थ -

1. फिनिश- सत् ; (Sata), 'सौ', लेप कुओते (Cuotte) सं0-शतम्, अवे0 सतॅम्
2. फिनिश-वसर (Vasar) 'हथौड़ा' लेप वाचेर (Voecer) सं0 वज्र, अवे0-वज्र
3. फिनिश-ओरस (Oras), 'मोर्द्विन-उरेश (Ures), सं0-वराह, अवे0 - वराज।
4. फिनिश- अर्वो (arvo), 'मूल्य', हंगेरियन - अर (ar) सं0-अर्घ।
5. फिनिश सिसर (Sisar) 'बहिन', मोर्द्विन- सज़ोर (Sazor), स0-स्वसर, अवे0-रवङ्हर्
6. मोर्द्विन शव, शेय (Sava, Seja) 'बकरा, सं0 छात्र।

यह नितान्त स्पष्ट है कि ये शब्द फिन्नी- उग्री भाषा परिवार ने भारत- ईरानी शाखा से लिये है तथा इससे विपरीत स्थिति नहीं हो सकती। अन्य भारोपीय भाषाओं में इनके समान्तर शब्द है तथा फिन्नी उग्री भाषा के लिये जाने के पूर्व ये शब्द आर्य भाषा अर्थात् संस्कृत के विशिष्ट परिवर्तनों से युक्त हो

चुके थे। जहाँ हमें भारत- ईरानी शब्द का कोई वास्तविक समानान्तर रूप भा0 भाषा में नहीं मिलता वहाँ भी उस शब्द की संघटना तथा ज्ञात भारोपीय धातु से उद्भूत होने की संभावना प्रायः इस बात का निदर्शन करती है कि वह परम्परा से प्राप्त शब्द है। उदाहरणार्थ- संस्कृत - वज्र, अवेस्ता वज्र- प्रसिद्ध प्रत्यय - 'र' (भा0 प्रत्यय- रा) जोड़कर बनाया गया है। इसे इस भारोपीय से उद्भूत माना जा सकता है जो ग्रीक वग्नुमि 'तोड़ना, फोड़ना' में है।

अतः हमें भारत- ईरानी तथा पड़ोसी फिन्नी- उग्रीयों के दीर्घ सम्पर्क की कल्पना करनी ही पड़ेगी और चुकी इस विषय में इस बात का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि शब्दों का आदान केवल एक ओर से हुआ होगा, हमें भा0 शब्दों के विषय में, जिनमें उक्त शब्दों की भाँति रूप तथा अर्थ दोनों दृष्टि से अत्यधिक समानता दृष्टिगोचर होती है, फिन्नी-उग्री परिवार को संभाव्य मूल स्रोत मानना चाहिए।

3.9.5 भारतीय आर्य भाषा -

उत्तर पश्चिम की काफीरी भाषाओं की कतिपय विभाषायें भारतीय आक्रमण के पूर्ण की प्राचीन आर्य भाषा के महत्वपूर्ण वैभाषिक भेदों का संकेत करती है। कुछ दृष्टि से ये भाषाऐं भारतीय आर्य तथा ईरानी का मध्य है। ये भाषाऐं भारतीय आर्य भाषा के समान हैं। परन्तु इसमें अर्थात् आर्य भाषा में इस युग में होने वाले परिवर्तन उदाहरणार्थ है ।

1. इन तथा ज़ का ह (त्र ईरानी ज तथा ज़) में परिवर्तन।

2. ज तथा ज़ दोनों ज (त्र ज तथा ज़) में मिल गये है।

3. क + स तथा श् + स् के संयोग से 'क्ष' का विकास हुआ है। ईरानी में ये ध्वनियाँ अलग-अलग सुरक्षित है।

4. 'गज्ह्' 'ब्ज्ह्' जैसी आर्य सघोष ध्वनियाँ अघोष 'क्ष' 'प्स्' के रूप में बदल दी गयी हैं।

5. आर्य ज़ ध्वनि सर्वत्र लुप्त हो गयी है।

6. द् के पूर्व आर्य ज़् ध्वनि के लोप से भारतीय आर्य प्रति- वेष्टित ध्वनि ड् का विकास हुआ, तथा अन्य संयुक्त ध्वनियों के परिवर्तन के साथ एक नई व्यंजन ध्वनियों का आरम्भ होता है। जो आर्य भाषा साथ ही अवशिष्ट भारोपीय भाषा के लिए सर्वथा नवीन है।

7. दो व्यंजन ध्वनियों के बीच 'स्' (ष) का लोप हो जाता है।

8. सभी पदान्त संयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ सरल बना दी जाती है तथा केवल पहली ध्वनि सुरक्षित रहती है।

9. महाप्राण ध्वनि 'ध' तथा 'भ' को ह् के रूप में दूर्बल बनाने को प्रवृत्ति आरम्भ हो जाती है (इह 'यहाँ': अवै0 इद्र) किन्तु

10. आर्य ध्वनियुग्म अइ् तथा अउ एकांकी स्वर ध्वनियाँ 'ए' तथा 'ओ' के रूप में बदल दिये गए है।

परिवर्तन की यह तालिका अत्यधिक प्रभावोत्पादक है तथा भारतीय आर्य भाषा के भावी इतिहास के लिए अत्यधिक महत्व की है और इसके परिपूर्णता प्राप्त करने के लिये समुचित समय की कल्पना करनी चाहिए। इसके साथ ही हमारी यह धारणा है कि त्वरित भाषाशास्त्रीय परिवर्तन का युग वैदिक युग के पूर्व था। जहाँ तथा परिनिष्ठित संस्कृत का सम्बन्ध है। निश्चित साहित्यिक भाषा की संस्थापना तथा उससे सम्बद्ध शैक्षिणिक परम्परा के साथ भाषा का प्रवहमान विकास अवरूद्ध कर दिया गया। वैदिक भाषा से परिनिष्ठित संस्कृत को अलग करने वाले ध्वन्यात्मक परिवर्तन साक्षात् प्राक्- वैदिक काल में होने वाले ध्वन्यात्मक परिवर्तनों की अपेक्षा नगण्य है।

3.10 भारोपीय भाषा की विशेषताएं

1. अपने मूल रूप की दृष्टि से यह परिवार श्लिष्ट- योगात्मक कहा जा सकता है।

2. इसमें योग प्रत्यय का प्रकृति से या सम्बन्धतत्त्व का अर्थतत्व से प्रायः सेमेटिक या हैमेटिक भाषा सा अन्तर्मुखी न होकर वहिर्मुखी होता है।

3. प्रत्यय जोड़े जाते है, इनके स्वतंत्र अर्थ का पता नहीं है। एकन्दो के विषय में विद्वानों ने कुछ अनुमान लगाया है।

4. यह भाषा प्रारम्भ में योगात्मक थी पर धीरे-धीरे ये वियोगात्मक हो गयी, जिसके कारण परसर्ग तथा सहायक क्रिया की आवश्यकता पड़ती है। है। साथ ही कुछ भाषाएं स्थान प्रधान हो गई है।

5. धातुएं अधिकतर एकाक्षर होती है इनमें प्रत्यय धातु में जोड़े जाते है उन्हें कृत कहते है तथा कृत के बाद जो जोड़े जाते है। उन्हें तद्धित कहते है ।

6. इस भाषा में पूर्वसर्ग या पूर्व विभक्तियाँ सम्बन्ध सूचना देने के लिए या वाक्य बनाने के लिये नहीं प्रयुक्त होतीं। इनका प्रयोग शब्द परिवर्तन एवं अर्थ परिवर्तन में होता है।

7. समास रचना की विशेष शक्ति इस परिवार में है। इसकी रचना के समय विभक्तियों का लोप हो

जाता है और समास रचना का ठीक अर्थ वहीं नहीं रहता जो अलग-अलग शब्दों को एक स्थान पर रखने से रहता है।

8. स्वर परिवर्तन सम्बन्धतत्व परिवर्तिन हो जाता है। आरम्भ में स्वराधात के कारण ऐसा हुआ होगा और जब धीरे-धीरे प्रत्ययों का लोप हो गया वे स्वर परिवर्तन ही सम्बन्ध परिवर्तन को स्पष्ट करने लगे।

9. एक स्थान से चलकर अलग-अलग होने पर इस परिवार की भाषाओं का अलग-अलग बहुत सी भाषाओं में विकास हुआ और सभी में प्रत्ययों की आवश्यकता पड़ी अतः यहाँ प्रत्ययों की संख्या अधिक हो गयी।

3.11 सारांश

इस इकाई में आपने भारोपीय भाषा के नामकरण, उनके प्रमुख स्थान, उनका विभाजन तथा संस्कृत के साथ सम्बन्ध एवं उनके अन्योन्य प्रभावों के विषय में अध्ययन किया। जिसकी सहायता से आप भारोपीय भाषा के विषय में जानकारी प्राप्त कर सके तथा उसके सभी उप-अंगों से परिचित हो सके।

भाषा भले ही किसी भी रूप में हमें द्रष्टव्य हो परन्तु उसके मूल श्रोत, उसके नामकरण तथा प्रभाव को निश्चित करना एक बड़ी ही चुनौती के रूप में हमारे समक्ष द्रष्टव्य होती है। कई विद्वानों ने अपने-अपने मतों के आधार पर भारोपीय के रूपों का निर्धारण किया है जिसका मूल रूप यहाँ द्रष्टव्य है।

इस ईकाई में आप संस्कृत एवं प्रमुख भारोपीय भाषाओं के विषय में विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

बोध प्रश्न

निम्न प्रश्नो के उत्तर दीजिए -

1. आइसलैंडिक जर्मनिक भाषा के वर्ग की भाषा है।

   (क) केंतुम् वर्ग (ख) सतम् वर्ग
   (ग) केतुम् और सतम् दोनों (घ) दोनों में से कोई नहीं

2. इलीरियन वर्ग की शाखा है।

   (क) तोखारी (ख) लैटिन
   (ग) केंचुम् (ख) सतम्

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) 'ओस्थ' भारोपीय भाषा है जिसका संस्कृत रूप .... है।

(ख) 'तिष्ठामि' का भारोपीय रूपान्तरण .... है।

(ग) 'वहिस्त' .... भाषा का शब्द है।

(घ) 'स्वितेति' .... भाषा का शब्द है।

4. नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही है तथा कुछ गलत है सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का चिन्ह बनाए।

(क) भारोपीय भाषा में अपश्रुति प्रणाली है। ( )

(ख) अवेस्ता भारोपीय भाषा के अन्तर्गत नहीं आता है। ( )

(ग) 'ददामि' केवल अवेस्ता में ही प्रयुक्त होता है। ( )

(घ) भारोपीय भाषाओं का विभाजन मुख्यतः दो रूपों किया गया है। ( )

3.12 शब्दावली

अन्योन्य - अन्य-अन्य

सामान्तर - समान अन्तर वाले

वर्गीकरण - विभाजन

निराधार - बिना आधार के

सानुनासिक - अनुनासिक के साथ

अप्रयुक्त - जिनका प्रयोग न हो

रूपाधिक्य - रूप की अधिकता

प्रयोगाधिक्य - अत्याधिक प्रयोग

3.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) केंतुम् वर्ग

2. (घ) सतम् वर्ग

3. (क) अस्थि (ख) स्थिस्थामि (ग) अवेस्ता (घ) प्राचीन स्लावी

4. (क) (✔) (ख) (x) (ग) (x) (घ) (✔)

3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 भोलानाथ तिवारी भाषा विज्ञान किताब महल 22-ए सरोजिनी नायडु मार्ग इलाहाबाद-211001

2. डॉ0 भोलाशंकर व्यास संस्कृत भाषा चौखम्बा, विद्या भवन, वाराणसी-1

3. भाषा विज्ञान का रसायन,डॉ0 कैलाश नाथ पाण्डेय गाजीपुर साहित्य संसद नौकापुरा, लंका

3.15 अन्य उपयोगी पुस्तकें

1.	भाषा विज्ञान	श्री भगवान तिवारी
2.	भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र	डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी
3.	भाषा विज्ञान की रूपरेखा	डॉ0 हरीश शर्मा
4.	भाषा विज्ञान	मंगल देव शास्त्री

3.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारोपीय भाषा का नामकरण एवं मूल-स्थान पर प्रकाश डालिए तथा इनके प्रमुख विशेषतांए बताइए।

2. संस्कृत के तत्कालीन प्रभावों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 4. संस्कृत एवं प्राचीन आर्य भाषाएं

इकाई की रूपरेखा :

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 संस्कृत एवं प्राचीन आर्यभाषा

4.4 प्राचीन आर्य भाषा

- 4.4.1 प्राचीन वैदिक भाषा
- 4.4.2 प्राचीन वैदिक भाषा की ध्वनियाँ
- 4.4.3 प्राचीन वैदिक भाषा के स्वराघात
- 4.4.4 प्राचीन वैदिक भाषा के समास
- 4.4.5 प्राचीन वैदिक भाषा के शब्द
- 4.4.6 प्राचीन वैदिक भाषा की प्रमुख बोलियाँ
- 4.4.7 पूर्ववर्ती एवं परवर्ती वैदिक भाषा
- 4.4.8 पूर्ववर्ती एवं परवर्ती वैदिक भाषा की ध्वनियाँ
- 4.4.9 पूर्ववर्ती एवं परवर्ती वैदिक भाषा का व्याकरण
- 4.4.10 प्राचीन लौकिक संस्कृत

4.5 वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर के कारण

4.6 वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर

- 4.6.1 ध्वनि के रूप में
- 4.6.2 स्वाराघात के रूप में
- 4.6.3 सन्धि के रूप में
- 4.6.4 कारक विभक्ति के रूप में
- 4.6.5 क्रिया के रूप के रूप में
- 4.6.6 समास के रूप में
- 4.6.7 प्रत्यय के रूप में

4.6.8 शब्द के रूप में

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 अन्य उपयोगी पुस्तकें

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भाषा व्यष्टि चेतना व समष्टि चेतना के पारस्परिक आदान-प्रदान का उपलब्ध परिणाम है। इसका विचार से अटूट रिश्ता है। भाषा की निगाह में भाषाभिव्यक्ति के लिए ध्वनि चिन्हों का महत्व सर्वाधिक है जबकि नेत्र ग्राह्य सता गौण है। भाषा भाव का अलंकरण तथा अभिव्यक्ति का प्रमुख उपकरण है। मानव मन-गुहा में स्थित रंगा-रंग संवेदनाओं को साकार करने की क्षमता भाषा में होती है। निराकार भाषा भाषिक क्षितिज पर चढ़कर मूर्त रूप धारण करता है। भाषिक दीप-शिक्षा में भाव-स्नेह के अनुसार ही लौ प्रस्फुटित है। कुल मिलाकर भाषा देशकाल के फलक पर हुए बदलाव का प्रामाणिक दस्तावेज है।

ईसा पूर्व 1500 में जब आर्यो द्वारा आक्रमण किया गया तब उन्होनें भी अपने राज्य विस्तार तथा पूर्ण विकास के लिए अपनी भाषा अर्थात् संस्कृत का प्रसार किया। जिसके कारण तत्कालीन भाषा अर्थात् प्राचीन आर्यभाषा मूलतः दो रूपों, वैदिक एंव लौकिक संस्कृत के रूप में विद्वानों द्वारा प्रत्यक्ष द्रष्टा हुई।

इस इकाई में आप संस्कृत एवं प्राचीन आर्यभाषा के रूप में तत्कालीन संस्कृत के विषय में तथाउनके मध्य सम्बन्ध एवं अन्तर के अनेक रूपों का अध्ययन करेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम संस्कृत तथा प्राचीन आर्यभाषाओं के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

- प्राचीन आर्यभाषा से परिचिति हो सकेगें।
- संस्कृत तथा आर्यभाषा के सम्बन्ध के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के अन्तर की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

4.3 संस्कृत एवं प्राचीन आर्यभाषा:

भारत वर्ष के अधिकांश भाग में बोली जाने वाली आधुनिक भाषाएं उस रूप वाली भाषा से विकसित हुई है। जिसका प्रसार लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व उत्तर - पश्चिम से भारत में आक्रमण करने वाले लोगों ने किया था। ये आक्रमणकर्ता अपनी भाषा में आर्य कहलाए। यह शब्द सामान्यतः

विशेषण रूप में भी प्रयुक्त होता है। जिसका अर्थ है - कुलीन, सम्मान्य। इन्ही के साथ के कुछ लोग मध्य-एशिया में रह गये। ये अपने लिए अवेस्ता में 'अइर्य' का प्रयोग करते थे जिसका षष्ठी वहुवचन में ईरान का आधुनिक नाम विकसित हुआ।

भारतीय शाखा को ईरानी शाखा से अलग करने के लिए 'भारतीय - आर्य' शब्द गढ़ लिया गया है और भाषा के अर्थ में यह प्राचीनकाल से लेकर आज तक इस श्रोत से विकसित भाषाओं तथा विभाषाओं के समग्र रूप के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसके व्यवहारतः तीन वर्ग किए जाते हैः- प्राचीन आर्यभाषा, मध्यकालीन आर्य भाषा तथा आधुनिक आर्य भाषा। प्राचीन आर्य भाषा के परिनिष्ठित एवं संस्कृत रूप के लिए भारतीय व्याकरणो ने' संस्कृत' शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ 'परिमार्जित सुसंस्कृत, (व्याकरण के नियमों के अनुसार) शुद्ध' है। यह प्रयोग अशिक्षित जन-सामान्य की भाषा-प्राकृत से भिन्नता बताने के लिए किया गया था, जो मूलतः ठीक वही आर्य भाषा थी, किन्तु जिसमें निरन्तर परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया पाई जाती थी। भारतीय आर्य भाषाओं अनार्य भाषाओं से पृथक करने के लिए आर्य विशेषण का प्रयोग किया जाता था जो म्लेच्छ असभ्य, असंस्कृत का विरोधी है।

संस्कृत शब्द व्याकरणों के द्वारा संकुचित अर्थ में नियमित परिनिष्ठित पाणिनीय संस्कृत के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु सुविधा के लिए इसका प्रयोग प्राचीन आर्यभाषा के समानार्थक रूप में किया जा सकता है। इस दृष्टि से इसमें पाणिनीय संस्कृत तथा प्राक्-पाणिनीय अथवा वैदिक भाषा दोनों का समावेश हो जाता है।

4.4 प्राचीन आर्यभाषा:-

आर्य जब भारत में आये, उस समय उनकी भाषा तत्कालीन ईरानी भाषा से कदाचित् बहुत अलग नहीं थी। किन्तु जैसे-जैसे यहाँ के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव, विशेषतः आर्येतर लोगों से मिश्रण के कारण पड़ने लगे, भाषा परिवर्तित होने लगी। इस प्रकार वह अपनी भगिनी-भाषा ईरानी से कई बातों में अलग हो गई। भारतीय आर्य भाषा का प्राचीनतम रूप वैदिक संहिताओं में मिलता है। इनमें रूपाधिक्य है, नियमितता की अपेक्षाकृत कमी है और अनेक प्राचीन शब्द है जो बाद में नही मिलते। वैदिक संहिताओं का काल मोटे रूप में 1200ई0 पूर्व से 900 ई0पू0 के लगभग है। यों वैदिक संहिताओं की भाषा में भी एकरूपता नहीं है। कुछ की भाषा बहुत पूर्ववर्ती है, जो कुछ की परवर्ती। उदाहरणार्थ अकेले ऋग्वेद में ही प्रथम और दसवें मण्डल की भाषा तो बाद की है, और शेष की पुरानी। यही पुरानी भाषा अपेक्षाकृत अवेस्था के निकट है। अन्य संहिताएँ (यजुः, साम, अथर्व) और

बाद की हैं। वैदिक संहिताओं की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न है क्योंकि यह काव्य-भाषा है। उस समय तक आर्यो का केन्द्र सप्तसिन्धु या आधुनिक पंजाब था, यद्यपि पूर्व में वे बहुत आगे तक पहुँच गये थे। ब्राह्मणों-उपनिषदों की भाषा कुछ अपवादों को छोड़कर संहिताओं के बाद की है। इसमें उतनी जटिलता एवं रूपाधिक्य नहीं है। इनके गद्य भाग की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। इस समय तक आर्यों का केन्द्र मध्यदेश हो चुका था, यद्यपि इधर की भाषा उत्तर जितनी शुद्ध नहीं थी। इस भाषा का काल 900 से बाद का है। भाषा का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है। इसका काल 700 ई0 पूर्व से बाद का है। यह संस्कृत पाणिनीय संस्कृत के काफी पास पहुँच गई है, यद्यपि उसमें पाणिनीय संस्कृत की एकरूपता नहीं है। इस काल के अन्त में लगभग 5वीं सदी में पाणिनि ने अपने व्याकरण में संस्कृत के उदीच्य में प्रयुक्त रूप के अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठित एवं पण्डितों में मान्य रूप को नियमबद्ध किया, जो सदा-सर्वदा के लिए लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत का सर्वमान्य आदर्श भाषाओं के रूप में विकास करती आज तक आयी है, किन्तु संस्कृत में साहित्य-रचना भी इसके समानान्तर ही होती चली आ रही है, जो मूलतः पाणिनीय संस्कृत होने भी हर युग की बोलचाल की भाषा का अनेक दृष्टियों से कुछ प्रभाव लिये हुए है और यही कारण है कि बोलचाल की भाषा न होने पर भी, उस साहित्यिक संस्कृत में भी विकास होता आया है। भाषा के जानकारों से यह बात छिपी नहीं है कि रामायण-महाभारत की भाषा पाणिनि के बाद की है। पुराने पुराणों की भाषा और भी परवर्ती है। फिर कालिदास से होते क्लैसिकल संस्कृत हितोपदेश तक तथा और आगे तक आई है । इस प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के वैदिक और लौकिक संस्कृत दो रूप मिलते है।

4.4.1 प्राचीन वैदिक भाषा:

(1500 ई0पू0 से800 ई0 पू0 तक) इसे 'प्राचीन संस्कृत', 'वैदिकी', वैदिक संस्कृत' या 'छन्दस्' आदि अन्यनामों से भी पुकारा गया है । संस्कृत का यह रूप, वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि में मिलता है । यों इन सभी में भाषा का कोई एक सुनिश्चित रूप नहीं है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, वैदिक साहित्य में इस भाषा का विकास होता दिखाई पड़ता है, फिर भी कुछ ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक बातें ऐसी हैं, जिनको वैदिक की सामान्य विशेषताएँ माना जा सकता है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा इसके समीप रही होगी, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि बोलचाल की भाषा के सभी रूप इसमें सुरक्षित हैं।

4.4.2 प्राचीन वैदिक ध्वनियाँ भाषा की ध्वनियाँ:

मूल भारोपीय एवं भारत-ईरानी से संस्कृत की (वैदिक तथा लौकिक) कुछ प्रमुख एवं महत्वपूर्ण

ध्वनियों का विकास किस रूप में हुआ, यहाँ देखा जा सकता है। कुछ स्थानों पर तो भारोपीय के पुनर्निर्मित तारांकित रूप दिये गये हैं और कुछ में मात्र ग्रीक या लैटिन आदि के ही रूप दिये गये हैं उक्त प्रकार के स्थानों में उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत ग्रीक या लैटिन आदि के शब्दों या रूपों में प्रयुक्त सम्बद्ध ध्वनि मूल भारोपीय का प्रतिनिधित्व करती है। उदाहरण के अभाव में कहीं-कहीं अवेस्ता

आदि से ही तुलना करके संतोष करना पड़ता है।

सं0 अः(1) भारो0 'अ से (भारो0 agei, मी0 agei, अवे0 azaiti, सं0 अजतिः ग्री0 agros लै0 ager, अं0 acre, सं0 अज्र)। (2) भारो0 ' हस्व ओ से (भारो0 ' esti, ग्री0 esti लै0 est अवे0 astiya अस्तिय, सं0 अस्ति, लै0 equus अवे अस्प, सं0 अश्व)। (3) भारो0 हस्व ओ से (भारो0 potis,ग्री0 posis, लै0 potis, अवे0 पइतिश्, सं0 पतिः, ग्री0 domos लै0 domus, रूसी dom, सं0 दम)। (4) भारो0 ऩ से (भारो0' tntos ग्री0 tatos सं0 ततः) (5) भारो0 म् से (भारो0 dekm ग्री0 deka लै0 decem गोथिक taihum सं0 दश)।

सं0 आः (1) भारो0 'आ (दीर्घ) से (भारो0 mater, ग्री0 mater, लै0 mater, अवे0 मातर्, सं0 मातृ)। (2) भारो0 ' ए (दीर्घ) से (ग्री0 men लै0 mensis, सं0 मास्। (3) भारो0 'ओ (दीर्घ) से (लै0 vox, अवे0 वाख्श , सं0 वाक्)। (4) भारो0 'न् (दीर्घ) से (भारो0 ' gntos मी0 gnotos,अवे0 जातो, सं0 जातः)। (5) भारो0 'म़ (दीर्घ) से (भारो0 ' ghs ग्री0 Khthon अवे0 ज, सं0 क्षाः)।

सं0 इः (1) भारो0 'अ से (भारो0' Peter मी0 pater अवे0 पितर, सं0 पितृ)। (2) भारो0 'इ से (भारो0 idh ग्री0 इथ, अवे0 इद, सं0 इह, पा0 इध)। (3) भारो0 'ऋ से (भारो0 ' grre अवे0 गइरिः सं0 गिरि)।

सं0 ईः (1) भारो0 'ई से (ग्री0 pion सं0 पीवन्)

सं0 उः (1) भारो0 'उ से (भारो0 ' daughter ग्री0 thugater फा0 दुख्तर, सं0 दुहित्) ।

(2) भारो0 'ऋ से (भारो0 ' grus अवे0 गोउरूए सं0 गुरू)

सं0 ऊः भारो0 'ऊ से (प्राचीन स्लाव दूमु ; (dymu) रूसी दइउम, सं0 धूम, लै0) ।

सं0 ऋ: (1) भारो0 'ऋ से (भारो0 ' prskhati, सं0 पृच्छति, प्राचीन उच्च जर्मनorscon)। (2) भारो0 'लृ से (भारो0 ' plhu, मी0 plaus, , अवे0 परथु, सं0 पृथु)।

सं0 ऋः मूलतः भारो0 से नहीं आया है। हस्व इ एवं हस्व उ से अन्त होने वाले शब्दों में षष्ठी बहुवचन में दीर्घ करने (सखि-सखीनाम्, गुरू-गुरूणाम्) की प्रवृत्ति थी । इसी के सादृश्य पर हस्व ऋ से अन्त होने वाले प्रातिपादकों के रूपों में दीर्घ ऋ (धातृ - धातृणाम्, धातन्, पितृ-पितृणाम् आदि) की प्रवृत्ति चल पड़ी, और इस प्रकार ऋ का विकास सादृश्य के कारण हुआ ।

सं0 लृ: भारो0 ’लृ से (अवे0 krp सं0 क्लृप्) ।

सं0 एः (1) भारो0 ’अइ से (ग्री0 daipher रूसी देविर् सं0 देवर)। (2) भारो0 ’एइ से (लिथुवानियन eiti, , सं0 एति)। (3) भारो0 ’ओ (ह्रस्व) से (ग्री0 oida , रूसी वेद, सं0 वेद, अवे0 वएद)।

सं0 ओ: (1) भारो0 ’अउ से (ग्री0 auos, लिथु sausas रूसी सुख - सं0 शोष-) (2)

भारो0 ’एउ से (ग्री0 euo , सं0 ओषति)। (3) भारो0 ’ओउ से (jouk , लिथु laukas, , सं0 लोक)।

सं0 ऐ: भारो0 के ’आइ, ’एइ, ’ओइ इन तीन संयुक्त स्वरों से। अर्थात् इ-अंत्य उन संयुक्त स्वरों से जिनके प्रारम्भ में दीर्घ स्वर (आ,ए,ओ) थे (ग्री0 eleipsa , सं0 अरैक्षम्)।

सं0 औ: भारो0 के ’आउ, ’एउ, ’ओउ, इन तीन संयुक्त स्वरों से। इनमें प्रथम स्वर दीर्घ है, तथा दूसरा ह्रस्व उ (ग्री0 bous , सं0 गौः ग्री0 naus , सं0 नौ)।

सं0 क्, ख्, ग्, घ्: भा0 यू0 में कवर्गीय ध्वनियाँ तीन थीं -- कंठ्य, कंठोष्ठ्य, कंठतालव्य। प्रथम दो वर्गो का विकास प्रायः सं0 कवर्ग में (परवर्ती स्वर के अग्र होने की स्थिति अपवाद है) हुआ है। (लै0 coxa सं0 कक्ष, भारो0 makhos सं0 मख, ग्री0 zugon , सं0 युगमः भारो0 ghwono सं0 धन) यों यदि विस्तार में जाएँ तो ख् और घ् के विकास में कुछ विवाद तथा अनियमितताएँ भी है।

सं0 च्, छ्, ज्, झ्: च्, ज् का विकास उन कंठ्य या कंठोष्य क्, ग् से माना जाता है, जिनके बाद अग्रस्वर होंः भारो0 kwe , लै0 que सं0 च, भारो0 ’ gwiwos सं0 जीव । छ प्रायः अग्रस्वर के पूर्व आने वाले स्ख (ग्रीक skia सं0 छाया) से आया है। ‘झ’ ध्वनि भारोपीय से विकसित शब्दों में नहीं मिलती। यह अनुकार, झंकार, झंझा, झरण आदि या मुंडा (झुंट) एवं द्रविड़ आदि से आगत शब्दों में ही मिलती है। कुछ भारत-ईरानी शब्द भी कदाचित् भारत में झ-युक्त (अवे0 ग्ज़रइति, सं0 ’झरति) हो गये। क् ग् से च्, ज् के विकास के कारण ही अनेक शब्दों में एक ध्वनि दूसरे के स्थान पर (वाच, वाक्, युज-युग) आ जाती है।

सं0 ट्, ठ्, ड्, ढ्,: सं0 में ये ध्वनियाँ या तो उन शब्दों में मिलती हैं, जो द्रविड़ आदि आर्येतर भाषाओं से आये हैं। (इस प्रकार द्रविड़ प्रभाव या देन हैं) जैसे कुटि, कठिन आदि, या फिर भारोपीय शब्दों की ’त्, ’थ, ’ज़्द (nis (उच्चरित रूप z) da > नीड) ’ ज़्ध् (astos (उच्चरित रूप z)

dhwam > अस्तोड्वम) ध्वनियों से विकसित हुई हैं। त् ध्वनि ’र् ’क्य (इसका संस्कृत रूप श मिलता है), तथा अप्रस्वर के पूर्ववर्ती ’ग्, ’घ् (कंठ्य या कंठोष्ठ्य) ()सं0 में इसका विकास ज्, ह् रूप में हुआ है) के सम्पर्क से ही प्रायः ट् हुई हैः ’कतुस > सं0 कटु। भारो0 ’थ ध्वनि भी इसी प्रकार र आदि के प्रभाव से ठ् में विकसित हुई है: gwrthod > जठर। ऋग्वेद में स्वर मध्यम ड् ढ् ही ळ् ल्ह हो गये हैं । सं0 त् थ् द् ध्ः ये भारो0 ’त्, ’थ्, ’द्, ’ध् से ही प्रायः विकसित हुए हैं ग्री0 तनु सं0 तनुः भारो0 rothos अवे0 रथ, सं0 रथः भारो0 ’ dekm सं0 वक्षः भारो0 ’ dhedhore सं0 द्धार ।

सं0 प् फ् ब् भ्: ये भारो0 ’प्, ’फ्, ’ब, ’भ से ही प्रायः निकले हैः भारो0 पेन्क्वे सं0 पंचः भारो0

phallo सं0 फलः भारो0 barghis सं0 बर्हिः भारो0 obhrus सं0 भ्रू।

सं0 ङ्, ञ्, ण्, न्, म्: भारो0 ’न, ’म से ही न्, म् विकसित हैं: भारो0 nizda > नीडः भारो0 gwegwome > सं0 जगाम। ञ्, ´ उस ङ् से आया है जो क्, ज् आदि होने वाले क्, ग् आदि के पूर्व थाः भारो0 ’पेडक्वें > सं0 पंच्। ’ङ, भारो0 ’ङ है। ण् या तो द्रविड़ शब्दों में है। या र आदि से प्रभावित ऩ है।

सं0 य्, र्, ल्, व्: भारो0 के अपने अनुरूप अंतस्थों से विकसित हुए हैं। यों र्, ल्, का आपसी परिवर्तन भी मिलता है। सम्भवतः रलयोरभेद: अत्यन्त प्राचीन काल से है। व् ध्वनि कंठोष्ठ्य कवर्ग से भी विकसित हुई है। भारो0 ’ yugom सं0 युगम्, भारो0 ’ klu सं0 श्रूः, भारो0 ’ ugra सं0 उग्र, भारो0 phallo , सं0 फल, भारो0 skwos सं0 अश्व।

सं0 स्, ष्, श्: भारो0 ’स से सं0 राः भारो0 menos, सं0 मनस्। भारो0 ’स् ध्वनि अ या आ को छोड़ अन्य स्वरों के पूर्व होने पर प्रायः ष् हो गई है। -- ’स +उ = षु (भानुषु) दंत्य ध्वनियों के ‘ट’ होने पर उनके प्रभाव से तथा कुछ अन्य परिस्थितियों में भी समीपवर्ती ‘स्’ ‘ष्’ हो गया है। भारो0 कंठ्य - तालव्य ’क् सं0 में श हो गया है: भारो0 dedorke सं0 ददर्श।

सं0 व - यह भारो0 ’व का ही विकसित रूप है।

सं0 ह् अघोष ह् (विसर्ग)-भारो0 के पदांत ’स तथा ’र् से निकला है: भारो0 ’ potis सं0 पतिः। घोष ह् तीनों घ, ’घ तथा ’भ् से विकसित हुआ है: ghwnti सं0 हन्ति, ’ idh सं0 इह, अवे0 इद्, - grbh . सं0 मह्।

ऊपर संस्कृत ध्वनियों का विकास, मूल भारोपीय भाषा को आधार दिखाया गया है। मूल भारत-

ईरानी के आधार पर भी ध्वन्यात्मक विकास की कुछ प्रमुख बातें यहाँ देखी जा सकती हैं। इसमें इस बात का पता चल जायगा कि भारतीय आर्य भाषा में, ईरानियों से अलग होने के बाद क्या-क्या प्रमुख परिवर्तन हुए तथा प्राचीन ईरानी में हुए परिवर्तनों से वे कितने भिन्न थें। प्रमुख बातें ये हैं: (1) मूल भारत ईरानी जो 'ज़ तथा 'ज ध्वनियाँ थीं, प्राचीन ईरानी से क्रमशः ज़् तथा ज् हो गई, किन्तु संस्कृत में ज् का तो ज् रहा ही, साथ ही 'ज़् का भी ज (अवे0 ज़ानु, सं0, जानु, प्राचीन फ़ा0 जीव) हो गया। इस प्रकार इन दोनों ध्वनियों के स्थान पर एक ध्वनि हो गई, (2) भारत ईरानी का 'ज ईरानी में तो बना रहा किन्तु संस्कृत में उसका लोप हो गया: भारत-ईरानी का 'मेज़्या, सं0 मेधा, अवे0 मज्दा।.. (3) 'ज़्ह (झ) 'तथा ज़्ह ईरानी में ज् हो गये, किन्तु संस्कृत में ह हो गये: सं0 हिम, अवे0 जिम। (4) ग्ज़्ह, ब्ज़्ह जैसे घोष, संस्कृत में आकर अघोष हो गये, किन्तु ईरानी में यह अघोषत्व नहीं आया:सं0 दिप्स्, अवै0 दिब्ज़। (5) महाप्राण ध्वनियाँ संस्कृत में तो न्यूनाधिक रूप से आई किन्तु ईरानी में प्रायः उनका अल्पप्राण रूप हो गया या संघर्षी: सं0 रथ, अवे0 रथ्, सं0 शफ, अवे0 सफ: सं0 भरति, अवे0 वरइति। (6) भारत-ईरानी 'अइ, का प्राचीन फ़ा0 में 'अइ' ही रहा, किन्तु अवेस्ता में यह अ हो गया एवं सं0 में एः मूल भा0 यू0 eitiya = वह जाता है, प्राचीन फ़ा0 aitiy, सं0 एति। (7) भारत - ईरानी 'अउ का प्राचीन फ़ा0 में 'अउ' ही रहा किन्तु अवे0 में अओ या आउ हो गया और संस्कृत में ओः प्राचीन फ़ा0 रउच, सं0 रोचस्, अवे0 ओचो।

4.4.3 प्राचीन वैदिक भाषा के स्वराघात:-

मूल भारोपीय भाषा में स्वराघात बहुत महत्वपूर्ण था। आरम्भ में वह बलात्मक था, जिसके कारण मात्रिक अपश्रुति विकसित हुई, किन्तु बाद में वह संगीतात्मक हो गया, जिसने गुणिक अपश्रुति को जन्म दिया। इस भाषा-परिवार के विघटन के समय स्वराघात केवल उदात्त तथा स्वरित था। भारत - ईरानी स्थिति में अनुदात्त भी विकसित हो गया। इस प्रकार वैदिक संस्कृति को परम्परागत रूप से अनुदात्त, उदात्त एवं स्वरित तीन कार के स्वराघात (संगीतात्मक) प्राप्त हुए थे। स्वराघात का इतना अधिक महत्व था कि सभी संहिताओं, कुछ ब्राह्मणों एवं आरण्यकों तथा वृहदारण्यक आदि कुछ उपनिषदों की पांडुलिपियाँ स्वराघात-चिंह्नित मिलती हैं और बिना स्वराघात के वैदिक छन्दों को पढ़ना अशुद्ध माना जाता है। स्वराघात के कारण शब्द का अर्थ भी बदल जाता था। 'इन्द्रशत्रुः' वाला प्रसिद्ध उदाहरण सर्वविदित हैः इन्द्र, शत्रु है (बहुब्रीहि), इन्द्रशत्रु = इन्द्र का शत्रु (तत्पुरूष)। शब्द आदि के अर्थ जानने में स्वराघात का कितना महत्व था, यह बेंकट माधव के 'अंधकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्। एवं स्वैरःप्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इव' (अर्थात् जैसे अन्धकार में दीपकों की सहायता से चलता हुआ कहीं ठोकर नहीं खाता, उसी प्रकार स्वरों

(स्वराघात) की सहायता से किये गये अर्थ स्फुट और संदेहशून्य होते हैं) कथन से स्पष्ट है। स्वराघात में परिवर्तन से कभी-कभी लिंग में भी परिवर्तन हो जाता था।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है वैदिक स्वराघात तीन प्रकार के थें: उदात्त अर्थात् उच्च, अनुदात्त अर्थात् निम्न तथा स्वरित अर्थात् मध्य। उदात्त, अनुदात्त तो स्पष्ट है, किन्तु स्वरित विवादास्पद है (दे0 लेखक के ग्रन्थ 'भाषा-विज्ञान कोश' में 'स्वरित')। यों मोटे रूप से 'समाहारः स्वरितः' के आधार पर स्वरित को उदात्त तथा अनुदात्त का समाहार कहा जा सकता है।

वैदिक साहित्य में स्वराघात के अंकित करने की कई पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में प्रायः उदात्त अचिह्न्ति मिलता है, अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा खींचते है तथा स्वरित के ऊपर खड़ी रेखा, जैसे अग्निना । सामवेद में उदात्त के लिए 1, स्वरित के लिए 2, तथा अनुदात्त के लिए 3, लिखने की परम्परा रही है1 ब3 र्हिषि2। शतपथ ब्राह्मण आदि में केवल उदात्त को चिंह्नित करते रहे हैं: पुरूषः।

ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक में मूल स्वराघात प्रायः उसी अक्षर पर है, जिस पर मूल भारोपीय में था: ग्रीक Tatos सं0 तत, स्, किन्तु विस्तार में बहुत अन्तर है। पहले लोग संस्कृत स्वराघात को मूल भारोपीय सा मानते थे, किन्तु अब इस दृष्टि से ग्रीक समीप मानी जाती है।.

वैदिक भाषा में प्रायः सभी शब्दों या पदों पर स्वराघात होता है। कुछ च, वा, इव से स्वाघातयुक्त से शब्द स्वराघातशून्य होते हैं। यों बहुत से ऐसे भी रूप होते हैं जो कुछ स्थितियों में तो स्वराघातयुक्त होते है, और कुछ में स्वराघातशून्य। उदाहरणार्थ सम्बोधन का रूप यदि वह वाक्यारम्भ में न हो तो प्रायःस्वराघातशून्य होता है। वैदिक संस्कृत में प्रातिपादिक, समास, संधि, कारकरूप, क्रिया तथा नामधातु आदि के स्वराघात के नियम अलग-अलग हैं।

टर्नर के अनुसार वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों ही स्वराघात था।

रूप-रचनाः-

वैदिक भाषा में लिंग तीन थे: पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग। वचन भी तीन थें: एक0, द्वि0, बहु0। कारक आठ थे: कर्त्ता, सम्बोधन, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण।

सामान्य कारक विभक्तियाँ ये थीं-

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन

	पु0 स्त्री0	नपुं0	पु0 स्त्री0	नपुं0	पु0 स्त्री0	नपुं0
कर्ता-	स्	-म्	- औ	- ई	- अस्	-नि,-इ
सम्बो0-	स्	-	-औ	-ई	- अस्	-नि,-इ
कर्म-	-अम्	-	-औ	-ई	- अस्	-नि,-इ
करण-	आ,-एन	-आ,-एन	-भ्याम्	-भ्याम्	-भिस्	-भिस्
सम्प्र0-	-ए	-ए	-भ्याम्	-भ्याम्	-भ्यस्	-भ्यस्
अपा0-	-अस्	-अस्	-भ्याम्	-भ्याम्	-भ्यस्	-भ्यस्
सम्बन्ध	-अस्	-अस्	-ओस्	-ओस्	आम्	आम्
अधि0-	-इ	-इ	-ओस्	-ओस्	सु	सु

विशेष (1) अकारान्त शब्दों को छोड़कर अन्य अपने मूल रूप में ही कर्ता एक0 नपुं0 में आते है। अकारान्त में -म् लगता है। (2) सम्बोधन के रूप केवल स्वरांत स्त्री0 पु0 एकवचन छोड़कर प्रायः कर्ता के रूपों के समान होते हैं। -मन्, -अन्, -मंत, -वंत, आदि कई स्वरान्त प्रातिपादिक (पुं0 एक0) भी अपवाद है।

उपर्युक्त रूपों में अधिकांश मूल भारोपीय-विभक्ति से सीधे आये है, और प्रयोग एवं रूप की दृष्टि से उनके समीप हैं। जैसे 'स से स (अवे0 श, मी0 स आदि), 'म् से द्वितीया -अम् (ग्री0 -न्, -अ, अवे0 -अम् आदि), चतुर्थी 'अइ, एइ से ए (ग्री0 ओइ), 'एस, 'ओस् से अस्, द्विवचन 'ओ से ओ, बहु0 -अस 'ओस् से, 'भास से भ्यस्, तथा 'स् से सु आदि। करण बहु0 -एभिः (देवेभिः) में 'ए' सर्वनामों से आया है। विशेषणों के रूप भी संसा की तरह चलते थे ।

तुलना के लिए -तर (ग्री0 तें रों, लैटिन तेंर, अवे0 तर) एवं तम (लैटिन-तिमो, अवे0 तम) क्रमशः मूल भारोपीय भाषा के 'तो प्रत्यय से सम्बन्धित हैं। -र तथा -म मूलतः स्वतन्त्र प्रत्यय थे, बाद में 'तो में जुड़कर -तर, -तम आदि हो गये। इसी प्रकार इयांस् (ग्री0 ईओंस, योंस्, लैटिन ior अवे0 -यह् -) तथा इष्ठ (ग्री0 इस्तों, अवे0 इश्त) क्रमशः मूल भारोपीय 'यों स् एवं 'इस्थ् से विकसित है।

मूल भारोपीय में सर्वनाम के मूल या प्रातिपदिक बहुत अधिक थे। विभिन्न बोलियों में कदाचित्

विभिन्न मूलों के रूप चलते थे। पहले सभी मूलों से सभी रूप बनते थे, किन्तु बाद में मिश्रण हुआ और अनेक मूलों के अनेक रूप लुप्त हो गये। परिणाम यह हुआ कि मूलतः विभिन्न मूलों से बने रूप एक ही मूल के रूप माने जाने लगे। वैदिक भाषा में उत्तम पुरूष में ही, यद्यपि प्राचीन पंडितों ने 'अस्मद्' को सभी रूपों का मूल मानाहै, किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो अह- (अहम्), म- (माम्, मया, मम, मयि), आव (आवम्, आवाम्, वाम्, आवयोः), वय (वयं), अस्म (अस्माभिः, अस्मभ्यम्, अस्मे आदि), इन पाँच मूलों पर आधारित रूप हैं। मध्यम आदि अन्य सर्वनामों में भी एकाधिक मूल हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वनामों के पीछे अनेक मूल रूपों की परम्परा है। अधिकांश सर्वनामों की परम्परा मूल भारोपीय भाषा तक खोजी गई है। जैसे भारो0 ' eghom से अहम् (अवे0 अज़ेम, लैटिन ego, पुरानी चर्च स्लाव अज़ु आदि), ' uei से वयम् (अवे0 वएम्) या tu से तू (लै0 तू, प्राचीन उच्च जर्मन दू, प्राचीन आइरिश तू, अवे0 तू) आदि। सर्वनामों की कारकीय विभक्तियाँ प्रायः संज्ञाओं जैसी ही हैं।

वैदिक भाषा में धातुओं के रूप आत्मने(middle) , परस्मै (Active) दों पदों में चलते थें।

कुछ धातुएँ आत्मनेपदी, कुछ परस्मैपदी एवं कुछ उभयपदी थीं। आत्मनेपदी रूपों का प्रयोग केवल अपने लिए होता था तथा परस्मै का दूसरों के लिए। क्रियारूप तीनों वचनों (एक0, द्वि0, बहु0) एवं तीनों पुरूषों (उत्तम, मध्यम, अन्य) में होते थें। काल तथा क्रियार्थ मिलाकर क्रिया के कुल 10 प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता हैः लट् (Present), लङ्(imperfect), , लिट्(perfect) , लुङ्(aorist), , लुट्, निश्चयार्थ (ndicative), सम्भावनार्थ (subjunctive लेट्),विध्यर्थ(injunctive), , आदरार्थ आज्ञार्थ(oypative) , तथा अज्ञार्थ (impertive लोट्) ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में लेट् का प्रयोग बहुत मिलता है, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग कम होता गया और अन्त में लौकिक संस्कृत में पूर्णतः समाप्त हो गया। वैदिक में भविष्य के बहुत कम है। उसके स्थान पर प्रायः सम्भावनार्थ या निश्चयार्थ का प्रयोग मिलता है। क्रिया - रूपों में तीन विशेषताएँ उल्लेखनीय है - (1) कुछ रूपों में धातु के पूर्व भूतकरण आगम अ- या - आ आता था (लङ्, लुङ्, लृङ में)। (2) धातु तथा तिङ् प्रत्ययों के बीच, कुछ धातुओ में विकरण जोड़े जाते थे। विकरण के आधार पर धातुओं के दस गण या वर्ग थे। जुहोत्यादि एवं अदादिगण विकरण रहित थें, शेष में निम्नांकित विकरण थे: भ्वादि में -उ- , दिवादि में -य-, स्वादि में -नु-, तुदादि में स्वराघातयुक्त -अ-, रूधादि में -न-, तनादि में -न-, क्र् यादि में -ना-, तथा चुरादि मे -अय-। (3) इच्छार्थक(desiderative), , अतिशयार्थक(intensive), , लट् (कुछ धातुओं में), लिट्, लुङ् (एक रूप में) में द्वित्व का प्रयोग होता है। इसमें महाप्राण के द्वित्व में महाप्राण का अल्पप्राण हो जाता है

('भी' से 'बिभी-'), कंठ्य का वर्ग के क्रमानुसार तालव्य ('गुह' के 'जुगूह') हो जाता है, तथा अन्य स्थानों पर प्रायः द्वित्व ('बुध' से बु-बुध्) होता है। यदि ऊष्म से धातु का आरम्भ हो तथा बाद में अघोष ध्वनि हो तो वही ध्वनि फिर आ जाती है, यदि वह महाप्राण हो तो उसका अल्पप्राण हो जाता है, तथा कंठ्य हो तो तालब्यः स्था- तस्था, स्कन्द-चस्कन्द, स्वज्-सस्वज्।

4.4.4. प्राचीन वैदिक भाषा के समास:

समास रचना की प्रवृत्ति मूल भारोपीय एवं भारत - ईरानी में भी थी। वहीं से यह परम्परा वैदिक संस्कृत में आई। वैदिक में समस्त पद प्रायः दो शब्दों के ही मिलते हैं। इससे अधिक शब्दों के समास अत्यन्त विरल है। जहाँ तक समास के रूपों का प्रश्न है, वैदिक में केवल तत्पुरूष, कर्मधारय, बहुब्रीहि एवं द्वन्द्व, ये चार ही समास मिलते हैं। लौकिक संस्कृत के शेष दो बाद में विकसित हुए है।

4.4.5. प्राचीन वैदिक भाषा के शब्द:

वैदिक भाषा में शब्दों की दृष्टि से दो बातें उल्लेख्य हैं। एक तो यह कि अनेक तथाकथित मूल शब्द से विकसित या तद्भव शब्द प्रयुक्त होने लगे। वेदों में यह 'इह' (यहाँ) इसी प्रकार का है । इसका मूल शब्द 'इध है । पालि 'इध' और अवेस्ता 'इद' इस बात के प्रमाण हैं कि महाप्राण व्यंजन के स्थान पर

'ह' के विकास से 'इध' से ही 'इह' बना है।

कट (मूल शब्द कृत), एकादश (मूल एकादश) भी इसी प्रकार के शब्द हैं। 'विशति' भी मूलतः 'द्विशति' रहा होगा, यद्यपि यह विकार भारत में आने के पहले ही आ चुका था। शब्दों की दृष्टि से दूसरी विशेषता यह है कि उस काल में ही भाषा में अनेक आर्येतर शब्दों का आगमन होने लगा था। उदाहरण के लिए वैदिक भाषा में अणु, अरणि, कपि, काल, गण, नाना, पुष्कर, पुष्प, मयूर, अटवी, तंडुल मर्कट आदि शब्द एक ओर यदि द्रविड़ से आये हैं, तो वार, कंबलवाण, कोसल (स्थानवाचीनाम), अंग (स्थानवाचीनाम) आदि आस्ट्रिक भाषा से।

4.4.6. प्राचीन वैदिक भषा की प्रमुख बोलियाँ:

ऊपर संकेत किया जा चुका है कि आर्य कदाचित् एकाधिक टोलियों में भारत में आये और इन टोलियों में भी आपस में कुछ भाषिक विभिन्नता थी। इसका आशय यह है कि 'आर्य भाषा' के भारत में आने के पहले ही उसमें सच्चे अर्थो में भाषिक एकरूपता नहीं थी। उदाहरण के लिए विद्वानों का विचार है कि मूल भारोपीय के र, ल भारत -ईरानी में प्रायः 'र' ही हो चुके थे, और भारतीय आर्य भाषा में फिर नये सिरे से 'र' ध्वनि अनेक शब्दों में 'ल' में विकसित हो गई। यही कारण है ऋग्वेद में

'ल' ध्वनि 'र' की तुलना में बहुत कम मिलती है तथा परवर्ती साहित्य में धीरे-धीरे उसमें वृद्धि हुई है। यों मेरा विचार है कि प्रमुख भारत-ईरानी में तो मूल भारोपीय के र् ल् का विकास 'र्' में हो चुका था, किन्तु उस समय भी कुछ टोलियाँ या बोलियाँ ऐसी थीं, जिनमें 'ल्' ध्वनि पूर्णतः लुप्त नहीं हुई थी। इस प्रकार कुछ दृष्टियों से अनेकरूपताओं से युक्त भारतीय आर्य भाषा भारत में आई, और यह ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर फैलती गई, इसका स्वरूप स्थानीय भाषाओं के प्रभाव के कारण बदलता गया। ब्राह्मण ग्रंथों से इस बात का पता चलता है कि वैदिक काल में प्राचीन आर्य भाषा के कम-से-कम तीन रूप - या तीन बोलियाँ - अवश्य थीं: पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। प्रथम अफ़गानिस्तान से लेकर पंजाब तक था, दूसरा पंजाब से मध्य उत्तर प्रदेश तक तथा तीसरा उसके पूर्व। यदि र्-ल् दोनों थे, और पूर्वी ल्-प्रधान थी। ऋग्वेद में पश्चिमोत्तरी बोली का ही प्रतिनिधित्व हुआ है। पश्चिमोत्तरी बोली में स्थानीय प्रभाव प्रायः बहुत कम पड़ा था, क्योंकि स्थानीय आर्येतर जातियाँ कुछ अपवादों को छोड़कर, वहाँ से भागकर दक्षिण पूर्व चली गई थीं। इसी कारण पश्चिमोत्तरी बोली को आदर्श माना गया। उसे उस समय 'उदीच्य' या 'उत्तरी' कहते थे। कौशीतकि ब्राह्मण (7-6) में आता है: तस्मादुदीच्यां प्रज्ञाततरा वायुद्यते। उदश्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुम्। यो वा तत आगच्छति, तस्य या शुश्रूषन्त इति। अर्थात् - उत्तर में अधिक विश्रता से, या प्रामाणिक भाषा बोली जाती है। उत्तर दिशा में ही बोलना सींचने जाते हैं। जो वहाँ से आता है, उससे सुनना चाहते हैं। मध्यदेशीय विशेषतः पूर्वी लोग संयुक्त व्यंजन, स्वराघात, सन्ति में तो गड़बड़ी करते ही थे, साथ ही 'र्' का 'ल्' भी कर देते थें। शतपथ ब्राह्मण (3-2-1-23) में कहा गया है: तेऽसुरा आत्तवसचो हेऽलव हेऽलव इति वदन्तः परावभूवुः। पतंजलि ने अपने महाभाष्य (स्पशाह्निक) में भी इसी को दोहराया है: तेऽसुरा हेलयों हेलय इति कुर्वनः पराबभूवुः। अर्थात् वे असुर 'हे, अरयः' के स्थान पर 'हेलयः हेलयः' उच्चारण करते हुए पराभव को प्राप्त हुए। यहाँ भी र् ल् की ओर संकेत है। इसी प्रकार उधर य् के स्थान पर व् उच्चरित करने की प्रवृत्ति भी थी।

किन्तु भाषा के ये तीन रूप सामान्य लोगों में थें। पण्डितों की भाषा एक सीमा तक परिनिष्ठित थी, और उपलब्ध वैदिक साहित्य में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः उसी का साहित्यिक रूप मिलता है।

4.4.7 पूर्ववर्ती एवं परवर्ती वैदिक भाषा:-

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के प्रथम रूप वैदिकके भी दो रूप मिलते हैं। पहला रूप ऋग्वेद के प्रथम एवं दसवें मंडल को छोड़कर अन्य मण्डलों तथा अन्य प्राचीन ऋचाओं आदि की भाषा में है तथा दूसरा उक्त दो मण्डलों में, अन्य वेदों में के परवर्ती भागों में, तथा आरण्यकों, उपनिषदों आदि में।

वैदिकी के इन दोनों रूपों में प्रमुख अन्तर निम्नांकित हैं:-

4.4.8. पूर्ववर्ती एवं परवर्ती वैदिक भाषा की ध्वनियाँ:-

(1) टवर्गीय ध्वनियाँ पूर्ववर्ती में बहुत कम हैं पर परवर्ती में उनका अनुपात बढ़ गया है। (2) पूर्ववर्ती में र् का प्रयोग अधिक है, किन्तु परवर्ती में ल् का प्रयोग भी पर्याप्त है। ऐसे शब्द भी है जिनमें पूर्ववर्ती वैदिकी में र् ध्वनि है तो परवर्ती में ल् ध्वनि-रोमन्-लोमन्,मुरच-म्लुच। (3) यह संकेत किया जा चुका है कि वैदिकी में प्राचीन घ्, ध्, भ् आदि महाप्राणों का 'ह्' हो रहा था। यह प्रवृत्ति इस काल में भी काम कर रही थी। इसीलिए प्राणों के स्थान पर 'ह' पूर्ववर्ती भाषा में कम मिलता है, किन्तु परवर्ती में अपेक्षाकृत अधिक है। उदाहरणार्थ प्राचीन वैदिक गृभाण, परवर्ती वैदिक संस्कृत गृहाण। इसी प्रकार पूर्ववर्ती आज्ञार्थ -घि (तिङ् प्रत्यय) के स्थान पर परवर्ती में -हि मिलता है।

4.4.9. पूर्ववर्ती एवं परवर्ती वैदिक भाषा का व्याकरण:-

व्याकरणिक दृष्टि से भी कई अन्तर हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि नाम एवं धातु के रूपाधिक्य एवं अपवाद परवर्ती में बहुत कम हो गए हैं, और परवर्ती की भाषा वैदिकी को छोड़कर लौकिक संस्कृत की ओर बढ़ती चली आ रही है। पूर्व वैदिकी में देवाः देवैः के अतिरिक्त देवासः, देवेभिः रूप भी हैं, किन्तु परवर्ती में देवासः, देवेभिः जैसे रूप अत्यन्त विरल हो गये हैं। 'अश्विना' जैसे द्विवचन रूप भी परवर्ती में प्रायः नही मिलते। पुरापने कृणुमः जैसे रूपों के स्थान पर परवर्ती मे कुर्मः जैसे रूप मिलते हैं। यह वस्तुतः ध्वन्यात्मक परिवर्तन के कारण हुआ है। 'नु विकरण में न् के लोप के कारण 'उ' रह गया है। अन्य भी इस प्रकार के अनेक रूपीय अन्तर है।

शब्द: शब्दों के क्षेत्र में सबसे प्रमुख बात यह हुई कि अनेक पूर्ववर्ती शब्द समाप्त हो गए, और वे परवर्ती वैदिकी में नहीं मिलते। ईम, वीति, विचर्षणि ऐसे ही शब्द हैं। इसके विरूद्ध परवर्ती वैदिकी में अनेक ऐसे शब्द प्रयुक्त होने लगे जो पूर्ववर्ती में नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त यों तो पूर्ववर्ती वैदिकी में भी आस्ट्रिक, द्रविड़ आदि शब्द आ गए थें, किन्तु उसकी संख्या अत्यल्प थी, पर, परवर्ती वैदिकी में उनकी संख्या अपेक्षाकृत बढ़ गई।

ऊपर जो बातें पूर्ववर्ती वैदिकी तुलना में परवर्ती वैदिकी में की गई हैं, परवर्ती वैदिकी या वैदिकी की तुलना में लौकिक संस्कृत या संस्कृत में भी प्रायः उन्हीं का आधिक्य मिलता है।

4.4.10 प्राचीन लौकिक संस्कृत:

इसे 'लौकिक संस्कृत' तथा 'क्लैसिकल संस्कृत' भी कहते हैं। भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' (संस्कार

की गई, शिष्ट या अप्रकृत) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूपों - उत्तरी, मध्यदेश, पूर्वी- का उल्लेख किया जा चुका है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार इनमें उत्तरी बोली थी, क्योंकि वही प्रामाणिक मानी जाती थी। पाणिनी ने अन्यों के भी कुछ रूप आदि लिए हैं और उन्हें वैकल्पिक कहा है। इस प्रकार मध्यदेशी तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा है, अतः जिस प्रकार हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की गद्य या पद्य भाषा को बोलचाल की भाषा नही कर सकते, उसी प्रकार संस्कृत को भी बोलचाल की भाषा नही कह सकते। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार प्रसाद जी की भाषा का आधार परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी है, जो बोलचाल की भी भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। पाणिनी द्वारा उसके लिए 'भाषा' (भाष् = बोलना) शब्द का प्रयोग, सूत्र 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' दूर से बुलाने में 'प्लुत' के प्रयोग का उनके द्वारा उल्लेख, बोलचाल के कारण विकसित संस्कृत को व्याकरण की परिधि में बाँधने के लिए कात्यायन द्वारा वार्तिकों की रचना, ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृति कभी बोलचाल की भाषा थी। अतः हार्नले, वेबर तथा ग्रियर्सन आदि पश्चिमी विद्वानों का यह कथन कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं थी, निराधार है। संस्कृत, भारतीय भाषाओं (आर्य तथा आर्येतर) की जीवनमूल तो रही है, साथ ही तिब्बती, अफगानिस्तानी, चीनी, जापानी, कोरियाई, सिंहली, बर्मी तथा पूर्वी द्वीप-समूह की भी अनेकानेक भाषाओं को इसने अनेक-विशेषतः शब्दिक-स्तरों पर प्रभावित किया है।

ऊपर वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषताएँ उल्लिखित है। लौकिक संस्कृत उससे मूलतः बहुत अधिक भिन्न नहीं है। इसीलिए इसकी सभी विशेषताओं को विस्तार से अलग गिनाने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ केवल वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तरों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

4.5. वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर के कारण:-

कारण --दोनों में अन्तर के प्रमुख कारण ये हैं:

(1) वैदिक भाषा का बहुत कुछ स्वरूप बाहर से बनकर आया था, और उसमें यहाँ जो कुछ परिवर्तन हुए थे भारतीय वातावरण, समाज एवं आर्येतर भाषाओं के तुरंत पड़े हुए प्रभाव से ही उत्पन्न थे, किन्तु संस्कृत भाषा के बनने तक ये प्रभाव बहुत गहरे पड़ चुके थे ओर उन्होंने संस्कृत भाषा की पूरी व्यवस्था को प्रभावित किया।

(2) यहाँ आने पर आर्यो ने नागरिक सभ्यता, द्रविणों से अपनाई, अतः जीवन में अधिक एकरूपता

आई, व्यवस्था बढ़ी। इसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव उनकी भाषा पर भी पड़ा और उसमें भी एकरूपता आई।

(3) नागरिक जीवन में नियमित पठ-पाठन एवं साहित्य-रचना को प्रोत्साहन मिला, इससे भाषा को एक परिनिष्ठित रूप देना पड़ा। परिणामतः भाषा में परिनिष्ठन आया, अपवाद निकल गए, किन्तु साथ ही उसमें शिष्ट जीवन की कृत्रिमता की गन्ध भी आ गई।

(4) समाज के विकास के साथ-साथ चिन्तन एवं ज्ञान-परिधि में विस्तार हुआ, भाषा का नियमित अध्ययन-विश्लेषण होने लगा, व्याकरण लिखे जाने लगे, लोगों ने सरलता तथा विचारों की सफल अभिव्यक्ति आदि की दृष्टि से भाषा की एकरूपता, नियमितता के महत्व को समझा, अतः पूर्ववर्ती भाषा की जटिलताएँ धीरे-धीरे अपने आप छँट गई।

(5) ध्वनियों में विकास आर्येतर प्रभावों, आर्येतर लोगों द्वारा उनका ठीक उच्चरण न किऐ जाने एवं सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण हुआ।

(6) शब्दों में परिवर्तन का कारण था, पुराने जीवन से आगे बढ़ने के कारण अनेक शब्दों का छूट जाना, तथा नए जीवन की अभिव्यक्ति की पूर्ति के लिए नए शब्दों का आगमन। लौकिक संस्कृत में ये नए शब्द कुछ तो द्रविड़, आस्ट्रिक आदि भारतीय भाषाओं से लिए गए, कुछ आवश्यकतानुसार ईरानी, ग्रीक या अरबी आदि से आए तथा कुछ व्याकरण के नियमों या भ्रामक व्युत्पति के आधार पर बन गए, या बनाए गए।

4.6. वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में अन्तर:

जैसा कि पीछे भी संकेत किया जा चुका है, इन दोनों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वैदिक भाषा का, लौकिक की तरह परिनिष्ठीकरण (Standardization) नहीं हुआ था इसी कारण लौकिक, जिस रूप में परिनिष्ठित एवं साहित्यिक है, वैदिक नहीं है। वैदिक अपने साहित्यिक रूप में भी संस्कृत की तुलना में जनभाषा कहलाने की अधिक अधिकारिणी है। इस स्थिति का प्रभाव दोनों के व्याकरण पर भी पड़ा है। वैदिक में जहाँ परिनिष्ठिकरण एवं नियमन कम होने से रूप की जटिलताएँ है, अनेकरूपताओं एवं अपवादों का आधिक्य है, लौकिक में वे या तो हैं ही नहीं, या हैं भी तो वैदिक की तुलना में बहुत ही कम। दूसरे शब्दों में वैदिक भाषा अपने बोलने वालों की तरह ही अधिक स्वच्छन्द है, किन्तु लौकिक अपने अपेक्षाकृत अधिक संस्कृत एवं नियमित समाज की तरह नियमबद्ध है, एकरूप है, इसी कारण पहली कठिन है तो दूसरी उसकी तुलना में अधिक सरल। दोनों के प्रमुख अन्तरों को कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत देखना अधिक सुविधाजनक होगा। इस प्रसंग में, एक बात की ओर पाठकों का ध्यान मैं विशेष रूप से खींचना चाहूँगा कि आगे जो अन्तर दिये गए हैं, उस प्रकार के छोटे बड़े अन्तर इन दोनों भाषाओं में काफी है। यहाँ केवल नमूने के तौर पर कुछ को ले

लिया गया है। यह सूची अन्तरों की पूरी सूची नहीं मानी जानी चाहिए।

4.6.1. ध्वनि के रूप में:-

(1) संस्कृत में आकर 'लृ' का लिखने में प्रयोग होता रहा किन्तु, इसका उच्चारण स्वर रूप में न होकर कदाचित् 'लृ' रूप में या इसके बहुत समीप होने लगा था।

(2) 'ऋ', ऋ भी उच्चारण में वैदिक के विपरीत शुद्ध स्वर नहीं रह गए थे। ये 'रि' 'री' जैसे उच्चरित होने लगे थें।

(3) ऐ, औ के उच्चारण वैदिक में आइ, आउ थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में थें 'अइ', 'अउ' हो गए।

(4) ए, ओ का उच्चारण वैदिक में 'अइ', 'अउ' था अर्थात् से संयुक्त स्वर थे, किन्तु संस्कृत में ये मूल स्वर हो गए।

(5) अनेक शब्दों में जहाँ वैदिक में 'र्' का प्रयोग होता था, लौकिक में 'ल्' का प्रयोग होने लगा। यह आर्येतर भाषा भाषियों का प्रभाव था, जिसका प्रारम्भ बहुत पहले हो चुका था।

(6) लेखन में ळ, ळह ध्वनियाँ समाप्त हो गयी थीं, और इनके स्थान पर ड, ढ प्रयुक्त होने लगे।

(7) इय उव् के स्थान पर 'य्' 'व्' हो गए थे।

(8) जिह्वामूलीय एवं उपध्मानीय का ख़, फ़ वाला उच्चारण समाप्त हो गया, और उनके स्थान पर विसर्ग का सामान्य उच्चारण होने लगा था।

(9) विसर्ग वैदिक काल में अघोष था, किन्तु संस्कृत काल में यह कदाचित् सामान्य भाषा में अघोष

नहीं रह गया था।

(10) वैदिकी में 'अनुस्वार' शुद्ध अनुनासिक ध्वनि थी, जिसे कुछ ने व्य´जन तथा कुछ ने स्वर कहा है। लौकिक संस्कृत में अनुस्वार पिछले स्वर से मिलाकर बोला जाने लगा। इस प्रकार मौखिक स्वर, अनुनासिक स्वर में अन्तर हो गया।

(11) कई ध्वनियों के उच्चारण स्थान में अन्तर आ गया। प्रातिशाख्यों से पता चलता है कि वैदिक तवर्ग ल्, स् दंतमूलीय थे, किन्तु संस्कृत में (लृतुलसानां दन्ताः) ये दंत्य हो गए। र् वैदिक में दन्तमूलीय ही था, किन्तु 'ऋटुरपाणां मूर्धा' से पता चलता है कि संस्कृत में यह कहीं-कहीं मूर्धन्य हो

गया था। वैदिक में तीन 'व'थे, दो अर्धस्वर और एक दन्तोष्ठ्य संघर्षी। 'वकारस्य दन्तोष्ठम' से लगता है कि संस्कृत में केवल एक 'व' दन्तोष्ठ था, किन्तु मेरा अपना विचार है कि तीनों ही लौकिक में थे यद्यपि उनका उल्लेख नहीं है। उनका लोप नहीं हुआ था। 'इग्यणस्सम्प्रसारणम्' में य्, व्, र्, ल् के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृ हो जाता है। यहाँ उ से सम्बद्ध वदन्तोष्ठ्य संघर्षी व कभी नही हो सकता। यह अन्तःस्थ या अर्धस्वर ही होगा। इस प्रकार संस्कृत में निम्नांकित ध्वनियाँ थीं - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, क्, ख्, ग्, घ्, ङ, च्, छ, ज्, झ्, ´, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ, ब्, भ्, म्, य्, र, ल्, व्, श, ष्, स्, ह् ह् (विसर्ग), ळ, ळह, व्।

(12) जनभाषा के अधिक निकट होने के कारण वैदिक में स्वर-भक्ति युक्त रूप - जैसे स्वर्गः- सुवर्गः, स्वः -सुवः, तन्वः- तनुवः - भी मिल जाते हैं, किन्तु सच्चे अर्थों में संस्कार की हुई भाषा होने के कारण प्राप्त संस्कृत साहित्य में स्वर्गः, स्वः, तन्वः ही प्रायः मिलते हैं, स्वर-भक्ति वाले रूप नहीं।

4.6.2. स्वराघात के रूप में

वैदिक में संगीतात्मक स्वराघात था। उसके कारण अर्थ में भी परिवर्तन होता था। इन्द्रशत्रु (दे0 0,3,1,1,2)। इसी प्रकार 'ऋतु' का एक प्रकार के स्वराघात में 'बुद्धिमानी' अर्थ था तो दूसरे प्रकार का होने पर बलिदान। स्वराघात के कारण शब्दों के लिंग में भी कभी-कभी अन्तर (अर्थ के साथ-साथ) पड़ जाता था। जैसे उदान स्वर आदि में हो तो ब्रह्मन् का अर्थ है 'प्रार्थना' और यह 'नपुंसकलिंग' है, किन्तु यदि उदात्त स्वर अन्त में हो तो यह पुलिंग होगा, और इसका अर्थ होगा 'स्तोता'। लौकिक में, स्वराघात और उसका अर्थ एवं लिंग आदि की दृष्टि से महत्व, पूर्णतः समाप्त हो गया। इसके विरूद्ध लौकिक में संगीतात्मक स्वराघात के स्थान पर बलात्मक स्वराघात विकसित हो गया। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बलात्मक स्वराघात के बीज यहीं मिलने लगते हैं।

4.6.3. संधि के रूप में:

संधियों की दृष्टि से भी वैदिक और लौकिक संस्कृत में कुछ अन्तर है। यहाँ केवल दो का उल्लेख किया जा रहा है:

(क) कई स्थानों में, लौकिक संस्कृत में जहाँ प्रकृतिभाव का नियम लगता है, वैदिक में ऐसा नहीं भी होता। जैसे 'रोदसी + इमें' का लौकिक में होगा 'रोदसी इमें'(ये दोनों द्यावा पृथिवी) किन्तु वैदिक में 'रोदसीमे' भी मिलता है।

(2) इसी प्रकार शिवः + अर्च्यः = शिवो अर्च्यः (वैदिक), शिवोऽर्च्यः (लौकिक), या, सः + अर्यः = सो अर्यः (वैदिक), सोऽर्यः (लौकिक)।

4.6.4. कारक विभक्ति के रूप में

इस दृष्टि से भी दोनों कुछ अन्तर है। (क) अकारांत पुल्लिंग के प्रथमा द्विवचन एवं बहुवचन में वैदिक में क्रमशः - औ, -आ तथा- आ‘, आसः आते हैं, किन्तु लौकिक में केवल -औ तथा-आः। उदाहरणार्थ बहुवचन में वैदिक में देवाः देवासः दोनों हैं, किन्तु लौकिक में केवल देवाः। (ख) तृतीया बहुवचन में इसी प्रकार वैदिक में -ऐः तथा - एभिः दो प्रत्यय प्रयुक्त होते है, किन्तु लौकिक में केवल -ऐः। जैसे वैदिक में रामैः, रामेभिः या देवैः, देवेभि, किन्तु लौकिक में केवल रामै, देवैः। (ग) षष्ठी बहुवचन में भी वैदिक में -आम् एवं -आनाम् दो का प्रयोग होता है, किन्तु लौकिक में प्रायः केवल -आनाम् का। (घ) इकारान्त पुल्लिंग में प्रथमा तथा द्वितीया के द्विवचन में -ई (द्यावापृथिवी) भी होता है, जबकि लौकिक में केवल - यौ (यण् + औ) - द्यावापृथिव्यौ। (ङ) तृतीया एकवचन में वैदिक में -ई और -या दोनों का प्रयोग मिलता है। (सुष्टुती, सुष्टुत्या), किन्तु लौकिक में केवल दूसरे का। (च) नपुंसक प्रथम तथा द्वितीया बहुवचन में वैदिक में -आ, -आनि (ता, तानि) दोनों आता है, किन्तु लौकिक में केवल -आनि (तानि)। (छ) इसी प्रकार उत्तम तथा मध्यम पुरूष सर्वनाम में अस्मे, त्वे, युष्मे, त्वा आदि कई रूप ऐसे हैं, जो केवल वैदिक में हैं, लौकिक में नहीं। अन्य सर्वनामों में भी ऐसे रूप है। (ज) वैदिक में सप्तमी एकवचन में विभक्ति-युक्त शब्दों के अतिरिक्त शून्य विभक्ति वाले रूप भी प्रयुक्त होते है, जैसे व्योम्नि,व्योमन्, किन्तु लौकिक में शून्य वाले रूप भी नहीं है। (झ) दस्यु, मन्यु जैसे कुछ रूपों को छोड़कर लौकिक में देवायु जैसे वैदिक रूप नहीं मिलते।

4.6.5. क्रिया के रूप में:-

क्रिया -रूपों में कुछ प्रमुख अन्तर ये हैं -

(क) वैदिक में लकारों में विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। लुङ्, लङ् लिट में परोक्षादि का भेद नहीं है। यहाँ तक कि कभी-कभी इनका कालेतर प्रयोग भी मिलता है।

(ख) वैदिक में लुट् के प्रयोग के बारे में सन्देह है। सम्भव है -तृ प्रत्ययांत हो।

(ग) वैदिक का लेट् लौकिक में नहीं है, यद्यपि उसके उत्तम पुरूष के तीन रूप लौकिक के लोट् में

आ गए है।

(घ) लोट् मध्यम पुरूष बहुवचन में लौकिक में केवल ‘त’ है, किन्तु वैदिक में ‘त’ के अतिरिक्त -तन, -धन, -तात् भी है।

(ङ) लोट् मध्यम पुरूष एकवचन में, वैदिक में धि का प्रयोग भी (कृधि = करः गधि = जा) मिलता है। लौकिक में इनके रूप मात्र कुरू, गच्छ है। यों वैदिक-धि का विकसित रूप-हि भी कभी-कभी लौकिक में प्रयुक्त होता है (जहि = मार डाल, जहाहि = छोड़ दे), यद्यपि इसके प्रयोग विरल है।

(च) लट् उत्तम पुरूष बहु0 में लौकिक में केवल -मः मिलता है, किन्तु वैदिक में -मः के अतिरिक्त -मसि भी मिलता है। (छ) वैदिक में लङ्, लुङ्, लृङ में भूतकरण (Augment) अ-नहीं भी मिलता, यद्यपि लौकिक में यह आवश्यक है। उदाहरण के लिए वैदिक में 'अगमत्' और 'गमत्' दोनो मिलते हैं, किन्तु लौकिक केवल 'अगमत्'।

(ज) लौकिक में निषेधार्थी 'मा' के साथ धातु में भूतकरण नहीं जुड़ता, किन्तु वैदिक में कभी-कभी जुड़ भी जाता है।

(झ) आत्मनेपद में, लट् में लौकिक में केवल -ते है, किन्तु वैदिक में -ते, और -ए दोनों (शेते, शये = सोता है) मिलते हैं।

(´) वैदिक में लिट् वर्तमान के अर्थ में था, किन्तु लौकिक में वह परोक्षभूत के लिए आता है।

4.6.6. समास के रूप में:-

(1) समासों में सबसे बड़ा अन्तर तो यह आया कि वैदिक में बहुत बड़े-बड़े समास बनाने की प्रवृत्ति नहीं थी, क्योंकि उस भाषा में कृत्रिमता नहीं है, किन्तु संस्कृत में कृत्रिमता के विकास के कारण बड़े-बड़े समस्त पद भी बनने लगे। इसका कारण यह था कि, वह उस रूप में बोलचाल की भाषा नहीं थीं, अपितु साहित्य की भाषा थी, जिसमें दैनिक भाषा की तुलना में प्रायः कृत्रिमता आ ही जाती है। साथ ही गद्य लेखन के विकास के कारण भी समास-प्रयोग की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला । कविता में बहुत बड़े-बड़े समास प्रायः नहीं आ सकते।

(2) समास के नियमों में भी कुछ बातें ऐसी मिलती हैं, जिनका लौकिक संस्कृत में प्रायः कठोरता से पालन होता है, किन्तु वैदिक में नहीं ।

(क) उदाहरणार्थ लौकिक संस्कृत में पूर्वपद तथा उत्तरपद इकट्ठे आते हैं, किन्तु वैदिक में वे व्यवहित भी हो जाते हैं। जैसे वैदिक में आता है: द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते (इसके आगे द्यु और पृथ्वी दोनों झुकते हैं।

(ख) इसी प्रकार लौकिक में पूर्वपद के इण् प्रत्याहार से परवर्ती 'स्' का 'ष्' नहीं होता, किन्तु वैदिक में हो जाता है। इसीलिए 'दुस् $ तर' का लौकिक में केवल 'दुस्तर' बनेगा, परन्तु वैदिक में 'दुस्तर'

और 'दुष्टर' दोनों होगें।

(3) वैदिक में केवल चार समासों - तत्पुरूष, कर्मधारय, बहुब्रीहि, द्वन्द्व - का ही प्रयोग प्रायः मिलता है, किन्तु लौकिक में द्विगु और अव्ययीभाव भी प्रयुक्त होते है। उपसर्ग - मूल भारोपीय भाषा में उपसर्ग वाक्यमें कहीं भी आ सकता था, क्रिया के साथ आना उसके लिए आवश्यक नहीं था। वैदिक में भी यह स्वच्छन्दता पर्याप्त मात्रा में मिलती है। जैसे 'यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरूण व्रतम् मिनीमसि द्यविद्यवि'। यहाँ 'प्र' उपसर्ग 'मिनी-मसि' से सम्बन्धित है किन्तु इन दोनों के बीच तीन शब्द आए है। लौकिक संस्कृत में उपसर्ग की यह स्वच्छन्दता नहीं मिलती।

4.6.7. प्रत्यय के रूप में:-

इस दृष्टि से भी कई अन्तर हैं। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे'-

(क) वैदिक में पूर्णकालक कृदन्त के कई प्रत्यय हैं, जैसे त्वा, त्वाय, त्वीन, त्वी, य, किन्तु लौकिक में त्वा और य केवल दो है।

(ख) तुमुन् अर्थ में भी वैदिक में तुम्, से , असे, अध्यै, तवै आदि कई प्रत्यय हैं, किन्तु लौकिक में मात्र तुम् ही है।

4.6.8. शब्द के रूप में:-

(1) अनेक वैदिक शब्द लौकिक में आकर अप्रयुक्त हो गए जैसे चक्षस्, अत्क, ऊष, पेच।

(2) अनेक नए शब्द बने और प्रयुक्त होने लगे जो वैदिकी में नही मिलते, जैसे विपुल, कर्तव्य (इसके लिए वैदिक शब्द 'कर्त्व' था) आदि।

(3) अनेक वैदिक शब्द लौकिक में प्रयुक्त होते तो रहे, किन्तु उनका अर्थ पूर्णतः बदल गया: मृळीक = दया (वैदिकी), महादेव (लौकिक), क्षिति = बस्ती, निवासस्थान (वैदिक), पृथ्वी (लौकिक), व्रत = शासन (वैदिक), प्रण, उपवास आदि (लौकिक), असुर = सुर, राक्षस (वैदिक), केवल राक्षस (लौकिक), वुह्नि = ले जाने वाला भी (वैदिक), मात्र आग (लौकिक),

(4) अनेक शब्दो को भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण कुछ का कुछ समझने से लौकिक में नए शब्द आ गए। उदाहरण के लिए असीरियन शब्द 'असुर' भारत -ईरानियों को बहुत पहले मिला था, और इसका अर्थ बड़ा स्वामी, देवा आदि था। अवेस्ता में देववाची'अहुर' यही है। बाद में कदाचित् ईरानियों से झगड़े के कारण संस्कृत का देववाची 'देव' उनके यहाँ राक्षसवाची हो गया। आज भी

फारसी में ‘देव’ का वही बुरा अर्थ है। हिन्दी-उर्दू में ‘देव दानव’ में देव फारसी ही प्रभाव है। दूसरी ओर उनका देव वाची ‘अहुर’ हमारे यहाँ ‘असुर’ रूप में राक्षश वाची हो गया। वैदिक में ‘असुर’ का पुराने (देवता) एवं नये (राक्षस) दोनों में प्रयोग मिलता है, किन्तु लौकिक में असुर प्रायः केवल राक्षसवाची ही है। साथ ही गलती से लोगों ने ‘असुर’ के ‘अ’ को नकारार्थक उपसर्ग समझ लिया, जो वस्तुतः यह था नहीं, अतः इसे हटाकर ‘सुर’ का देवता के अर्थ में प्रयोग प्रारम्भ कर दिया।इसी प्रकार ‘असित’ का अर्थ काला था। इसमें भी ‘अ’ उपसर्ग नहीं था, किन्तु उसे उपसर्ग समझकर ‘अ’ अलग कर लिया गया, और लौकिक में ‘सित’ का श्वेत के अर्थ में प्रयोग होने लगा।

(5) वैदिक में विजातीय शब्द आए थे- विशेषतः द्रविड़ एवं आस्ट्रिक से, किन्तु लौकिक संस्कृत में उनकी संख्या बहुत बढ़ गयी। पीछे वैदिक के प्रसंग में कुछ शब्द दिए गए है। यहाँ कुछ और विजातीय शब्द दिए जा रहे हैं, जो संस्कृत में प्रयुक्त हुए हैं। कुल विजातीय शब्द 2 हजार के लगभग होगें।

द्रविड़ शब्द -

संस्कृत में द्रविड़ से एक हजार से ऊपर शब्द आए हैं। कुछ उदाहरण ये हैं आरू (केंकड़ा), एड (भेड़), एण (मृग), करट (कौवा), कीर (तोता), कुक्कुट (मुर्गा), कुक्कुर (कुत्ता), घुण (घुन), नक्र (घड़ियाल), मर्कट (बन्दर), मीन (मछली), अर्क (मन्दार), कानन (जंगल), पनस (कटहल), पिप्पलि (पीपर), कुंतल (बाल), भाल (ललाट), मुख (चेहरा), अगुरू (अगर), अनल (आग), उलूखल (ओखली), कटु (कड़ा), कठिन, काल (काला), कुटी, कुंड, कुंडल, कोण, चन्दन, ताल (ताड़), बिल, मुकुल, मुरज (एक प्रकार का ढोल), वलय (कंगन) तथा हेरम्भ (भैंसा) आदि।

आस्ट्रिक शब्द -

संस्कृत में आस्ट्रिक के भी सौ से ऊपर शब्द हैं। कुछ उदाहरण है: ताम्बूल, हंबा (गाय की आवाज), श्रृंगार, आकुल, आटोप (गर्व), आपीड (मुकुट), कबरी (बाल), कवल (कौर), कासु (बीमारी), कुविन्द (जुलाहा), तथा खिंकिर (लोमड़ी) आदि।

यूनानी शब्द -

यूनान से भारत का सम्बन्ध काफी पुराना है। सिकन्दर के आने के पूर्व से दोनों देशों में व्यापारिक सम्बन्ध थें। इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप कई शब्द यूनानी भाषा ने संस्कृत से लिए तथा कई शब्द संस्कृत में आए। संस्कृत में यूनानी से आए कुछ शब्द हैं यवन, यवनिका, द्रम्म (दाम), होडा (होड़ा),

त्रिकोण, सुरंग, क्रमेल (ऊँट), कगु (एक अनाज), तथा कस्तीर (रांगा) आदि।

रोमन शब्द:

रोमन साम्राज्य से हमारा संबंध कुषाण राजाओं से भी पहले से रहा है। यह सम्बन्ध व्यापारिक के साथ-साथ राजनीतिक भी था। परिणामस्वरूप वहाँ से भी शब्दों का आदान प्रदान हुआ। संस्कृत में लिए गए शब्दों में रोगक (एक प्रकार का चुंबक) तथा दीनार प्रमुख है।

अरबी शब्द

परवर्ती संस्कृत में फलित ज्योतिष, अश्वविज्ञान तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में अनेक शब्द अरबी से आए कुछ उदाहरण है: रमल, इक्कवाल (ज्योतिष में सौभाग्य), इत्थशाल (ज्योतिष में तीसरा योग), ईसराफ (ज्योषिमें चौथा योग), गैरकंबूल (ज्योतिष में 9वाँ योग), वोल्लाह (विशेष रंग का घोड़ा), तथा सहम (सौभाग्य, दुर्भाग्य) आदि।

ईरानी शब्द:

ईरान से भारत का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन है। इसी कारण सैकड़ों शब्द वहाँ से भी आए है। कुछ शब्द ये हैं--हिन्दू बारबाण, तालिक (ईरानी व्यक्ति), मिहिर (सूर्य), बादाम (मेवा विशेष), बालिश (तकिया), खोल, खर्बूज, तथा निःशाण (जलूस) आदि।

तुर्की शब्द - इससे अपेक्षाकृत बहुत ही कम शब्द आए हैं तुरूष्क, खच्चर।

चीनी शब्द:- संस्कृत में कुछ शब्द चीनी से भी आए हैं, यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं हैःचीन (चीनांशक, चीनचोलक) तथा मसार (एक रत्न) ।

पुराने शब्दों के लोप, नए के आगम, अर्थ का परिसीमन या परिवर्तन इन सभी बातों को दृष्टि में रखते हुए मोटे रूप से कहा जा सकता है वैदिक एवं लौकिक की अभिव्यक्ति में चालीन प्रतिशत का अन्तर पड़ा। केवल 60 प्रतिशत बातें ही समान रहीं।

बोलियाँ:- वैदिक भाषा के प्रसंग में पश्चिमोत्तरी (या पश्चिमी या उत्तरी), मध्यदेशी (या मध्यवर्ती) तथा पूर्वी, इन तीन बोलियों का उल्लेख किया जा चुका है। संस्कृत काल में आर्यभाषा - भाषी प्रदेश में कदाचित् एक दक्षिणी रूप भी जन्म ले चुका था। इसप्रकार संस्कृत काल में पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, दक्षिणी और पूर्वी ये चार बोलियाँ थीं।

बोध - प्रश्न

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए:-

1- भारतीय शाखा को ईरानी शाखा से अलग करने के लिए प्रयुक्त शब्द है-

(क) भारोपीय (ख) भारत ईरानी

(ग) भारतीय आर्य (घ) वैदिक आर्य

2- वैदिक भाषा में धातुओं के रूप पद में चलते थें।

(क) केवल परस्मैपद (ख) केवल आत्मने पद

(ग) आत्मनेपद परस्मैपद दोनों (घ) दोनों में से कोई नही

3- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) आर्यों के आने के समय उनकी तत्कालीक भाषा .... से कदाचित अलग नहीं थी।

(ख) विवरण के आधार पर धातुओं के .... थें।

(ग) लौकिक संस्कृत को .... भी कहते हैं।

(घ) रोमन साम्राज्य से हमारा सम्बन्ध .... पहले रहा है।

4- नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही है तथा कुछ गलत है सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में (√) तथा गलत वाक्यों के सामने (ग) का चिन्ह बनाओं -

1- वैदिक साहित्य का समय 1500 ई0पू0 से 800ई0पू0 तक माना जाता है।

2- मूल भारोपीय भाषा में स्वराघात का कोई स्थान नही है।

3- वैदिक भाषा में धातुओं के रूप आत्मने पद में चलते थें।

4- वैदिक तथा लौकिक साहित्य में अन्तर नही होता है।

4.2 सारांश

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप संस्कृत एवं प्राचीन आर्य भाषाओं के ज्ञान के साथ आपने संस्कृत के भागों एवं उसके व्याकरण, उच्चारण और उनकी आपसी अन्तरादि के विषय में अध्ययन किया । तथा इनके सभी पहलुओं का भी अध्ययन ग्रहण किया । भारत में आर्यों का आगमन लगभग एक हजार वर्षो तक शनैः शनैः होता रहा। ऐसी परिस्थिति में कालगत व्यवधान के कारण निश्चय ही इन सब आर्यों को एक भाषाभाषी मानना असंगत है । वैदिक साहित्य में प्राप्त भाषागत विविधताओं से स्पष्ट है कि आर्य भिन्न भाषा-भाषी थे । जिसका पूर्ण रूप से समाधान के साथ आपको उनके भाषागत विविधताओं की जानकारी इस इकाई से मिली।

4.9. शब्दावली

तत्कालीन	-	उस समय का
रूपाधिक्य	-	रूप की अधिकता
पुनर्निमित	-	पुनः निर्माण किया हुआ
स्वराघात	-	स्वरों का आघात
प्रयोगाधिक्य	-	अत्यधिक प्रयोग
शनैः शनैः	-	धीरे-धीरे
अध्ययनोपरान्त	-	अध्ययन के उपरान्त
अप्रयुक्त	-	जिनका प्रयोग न हो
क्लैसिकल	-	शास्त्रीय

4.9. बोध प्रश्नों के उत्तर

1- (ग) भारतीय आर्य

2- (ग) आत्मनेपद परस्मैपद दोनों

3- (क) ईरानी भाषा (ख) दस गण (ग) क्लासिकल संगीत (घ) कुषाण राजाओ

4- (क) (√) (ख) (ग) (ग) (ग) (घ) (ग)

4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- डॉ0 भोलाशंकर व्यास - संस्कृत भाषा - चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी -1.

2- डॉ0 भोलानाथ तिवारी - भाषा विज्ञान- किताब महल 22-ए सरोजिनी नायडू मार्ग इलाहाबाद - 211001.

3- डॉ0 कैलाशनाथ पाण्डेय- भाषा विज्ञान का रसायन- गाजीपुर साहित्य संसद, नौकापुरा, लंका,गाजीपुर।

4.11. अन्य उपयोगी पुस्तकें

1- भाषा विज्ञान - श्री भगवान तिवारी

2- भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र - डाँ0 कपिलदेव द्विवेदी

3- भाषा विज्ञान की रूपरेखा - डाँ हरीश शर्मा

4- भाषा विज्ञान - मंगलदेव शास्त्री

4.12. निबन्धात्मक प्रश्न

1- प्राचीन आर्य भाषाओं का परिचय देते हुए संस्कृत से सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

2- वैदिक तथा लौकिक संस्कृत को स्पष्ट करते हुए उनके मध्य अन्तर स्थापित कीजिए।

इकाई 1 . संस्कृत पदसंरचना

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में पदसंरचना का विशेष महŸव है। यह भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत आती है। इसमें संस्कृत पद-रचना से सम्बन्धित विषय का विश्लेषण किया गया है। संस्कृत पद-संरचना के सम्बन्ध में प्राचीन काल से विचार होता चला आया है।

पद- संरचना का उद्देश्य पदों की सम्पक् रचना है। इस सम्बन्ध में यास्क, पाणिनि, कात्यापयन, पतंजलि भट्टोजिदीक्षित आदि आचार्यों ने अतिशय महŸवपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। इस इकाई में पद-संरचना के सम्बन्ध में विविध प्रकार से प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तु इकाई में संस्कृत पद-संरचना से सम्बन्धित विषय का सम्यक् विश्लेषण किया गया है, जिससे आप संस्कृत पद-संरचना के महŸव को समझ सकेंगे और इस विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप-

1. संस्कृत पद-संरचना को समझ सकेंगे ।
2. संस्कृत पद-संरचना किस प्रकार होती है? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
3. संस्कृत पद-संरचना में केवल शब्दों का प्रयोग नहीं होता है, इसकी जानकारी पा सकेंगे।
4. सुबन्त और तिङ्न्त को पद कहते है? यह जान सकेंगे।
5. संस्कृत के सु आदि 21 प्रत्ययों की जानकारी कर सकेंगे।
6. धातुओं से होने वाले तिप् आदि 18 प्रत्ययों को जान सकेंगे।
7. सुबन्त और तिङन्त प्रत्ययों के योग के बिना पद-संरचना सम्भव नहीं है। इसकी विधिवत् जानकरी कर सकेंगे।
8. जब राम आदि शब्दों से सु आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जायेगा तभी रामः आदि पदों की संरचना होगी, इस विषय को विधिवत् समझ सकेंगे।

1.3 संस्कृत पद संरचना - अर्थ एवं स्वरूप

संस्कृत पद संरचना का अर्थ संस्कृत में पदो की रचना करना है। वस्तुतः किसी शब्द का वाक्य में तभी प्रयोग किया जा सकता है, जब उसे पद बना लिया हो। पद बनने के लिए शब्द का सुबन्त या तिङ्न्त होना अनिवार्य है। अतएव यह स्पष्ट है कि जब किसी शब्द के आगे सुप् या तिङ् प्रत्यय जुड़ता है तभी वह पद कहलाता है। इनके अभाव में कोई शब्द पद नहीं कहलायेगा और जब तक

वह पद नहीं बनेगा तब तक उसका वाक्य में प्रयोग नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रकृति मूल रूप और प्रत्यय सम्बन्ध तत्व के मिलने से पद या रूप बनता है। इस प्रकार मूल शब्द में प्रत्यय का योग आवश्यक है जैसे - 'रामः गच्छति' में राम मूल रूप है। परन्तु उनका प्रयोग तभी होगा जब उसमें सुप् प्रत्यय जुड़कर वह 'रामः' बन जायेगा।

1.4 संस्कृत पद संरचना

1.4.1 संस्कृत पदसंरचना विमर्श

शब्द का वाक्य में प्रयोग किया गया रूप पद कहलाता है। वाक्य में प्रयुक्त होने पर शब्द में कुछ परिवर्तत या विकार आ जाता है, उसे पद कहते हैं। संस्कृत के प्रख्यात वैयाकरण महर्षि पाणिनि ने पद की परिभाषा इस प्रकार दी है-'सुप्तिङ्न्तं पदम्' अर्थात् 'सुबन्त' और 'तिङ्न्त' को पद कहते हैं। इसका आशय यह है- किसी शब्द के आगे जब कोई सुप् प्रत्यय या तिङ् प्रत्यय जुड़ता है तभी वह पद कहलाता है। जब तक किसी शब्द के अन्त में सुप् और तिङ् प्रत्यय नहीं लगेंगे तब तक उसे पद नहीं कहा जा सकता। संस्कृत में 21 प्रत्ययों को सुप् कहते हैं। 'सु' से प्रारम्भ कर 'सुप्' पर्यन्त प्रत्ययों का प्रत्याहार 'सुप्' है। ये प्रत्यय सात विभक्तियों और तीन वचनों को लेकर निर्धारित किये गये हैं। इन प्रत्ययों का स्वरूप इव प्रकार है-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी	ङसि	भ्यास्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

इस प्रकार 'सु' लेकर सुप् के 'प्' तक 'सुप्' कहलाता हें इस सुप् के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी 21 प्रत्यय जाते हैं।

सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का ही प्रयोग होता है। इन प्रत्ययों के व्यावहारिक रूप को सझने के लिए निम्नलिखित चक्र को सावधानी से पढ़े-

कारक	विभक्ति	चिह्न	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	ने	रामः	रामौ	रामाः
कर्म	द्वितीया	को	रामम्	रामौ	रामान्
करण	तृतीया	से, द्वारा	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	के लिए	रामाय	रामाभ्याम्	रामैभ्यः
अपादान	पंचमी	से	रामात् (द)	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	का, के,की	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
अधिकरण	सप्तमी	में, पर	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	प्रथमा	हे, र	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

‘तिङ्’ प्रत्याहार में ‘तिप्’ से लेकर ‘महिङ्’ तक 18 प्रत्यय होते हैं। ये प्रत्यय धातुओं से होते हैं।

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरूष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरूष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	त	आताम्	झ
मध्यम पुशष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरूष	इट्	वहि	महिङ्

परस्मैद प्रत्यय से युक्त पठ् = पढना धातु के लट् लकार के रूपों का अवलोकन करें-

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	पठति	पठतः	पठन्ति
मध्यम पुरूष	पठसि	पठथः	पठथ
उत्तम पुरूष	पठामि	पठावः	पठामः

इसी प्रकार आत्मनेपद से युक्म शी = शयन करना, धातु के लट् लकार के रूपों का अवलोकन करें-

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	शेते	शयाते	शेरते
मध्यम पुरूष	शेषे	शयाशे	शेध्वे
उत्तम पुरूष	शये	शेवहे	शेमहे

इस प्रकार सुबन्त, तिङ्न्त'युक्त शब्दों को ही पद कहते हैं। वाक्य में उन्हीं का प्रयोग होता है। प्रकृति (मूल रूप) तथा प्रत्यय (सम्बन्ध तत्व) के मिलने से 'पद' या 'रूप' बनता है । पतंजलि के इन शब्दों के अनुसा 'नापि केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवलः प्रत्यय' अकेले 'प्रकृति' या 'प्रत्यय' का प्रयोग नहीं किया जाता सकता अर्थात् इन दोनों के योग से बने 'पद' या 'रूप' का वाक्य में प्रयोग किया जाता है। 'रामः गच्छति' में 'राम' रूप है, शब्द है किन्तु 'रामः' पद है।

वाक्यों में प्रयुक्त पदों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वह भाग जिससे अर्थ का ज्ञान होता है जो मूल रूप में रहता है अर्थात् मूल शब्द तथा द्वितीय वह भाग जो मूल रूप से संयुक्त होकर अर्थ प्रकट कतर है अर्थात् मूल शब्द से जुड़ने वाले सम्बन्ध बोधक शब्दद्व विभक्ति तथा प्रत्यय आदि। इनमें प्रथम भाग 'अर्थतत्व कहलाता है तथा दूसरा भाग 'सम्बन्धतत्व' कहलाता हैं। सम्बन्धतत्व अर्थ तत्व के पारस्परिक सम्बन्ध को बताता है। वाक्य के गठन के लिए सम्बन्धतत्व की आवश्यकता होती है। अर्थततवों आपसी सम्बन्ध बताने वाले शब्दों (रूा रूपों), पर विवेचना करने के कारण रूप-विज्ञान, (या पद विज्ञान रूप विचार, पद रचना आदि) कहा जाता है।

1.4.2 सम्बन्ध तत्वों के भेद-

सम्बन्ध तत्वों के विद्वानों के अनके भेद प्रस्तुत किये हैं जो कि इस प्रकार है-

1.स्वतन्त्र शब्द

अनेक भाषाओं में स्वतन्त्र शब्द के प्रतीक अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं अर्थात् सम्बन्ध तत्व से संयोजित न होकर स्वतन्त्र रहते हैं। जैसे संस्कृत में इति, अपि, एव, अथ, आदि, च, न, व आदि।

2. शब्दस्थान

किन्हीं-किन्हीं भाषाओं में वाक्य में शब्द के स्थान पर सम्बन्ध तत्व का ज्ञान होता है। संस्कृत के

समासों में शब्दस्थान की विशेष महत्व है-

राजपुत्र = राजा का पुत्र (राजकुमार)

पुत्रराज = पुत्रों का राजा (श्रेष्ठ पुत्र)

राजसदन = राजा का घर

सदनराज = घरों का राजा (श्रेष्ठ घर या अच्छा घर)

3. **प्रत्यय-**

अर्थतत्व के साथ सम्बन्ध तत्व प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में आवश्यकतानुसार प्रत्यय जोड़े जाते हैं। संस्कृत में प्रायः इन प्रत्ययों का प्रयोग शब्द के आगे होता है-

जैसे- विनाउदात्त ढ़क् = वैनतेय।

राष्ट्र घ = राष्ट्रिय।

बुद्धि मतुप् = बुद्धिमान्।

प्रशस्य इष्ठन् = श्रेष्ठ इत्यादि ।

संस्कृत शब्दों में लगने वाली विभक्तियाँ अन्त प्रत्यय ही है।

बालक स्य = बालकस्य।

4. ध्वनि गुण (मात्रा, स्वर, बलाघात)

ध्वनि गुण अर्थात् मात्रा, स्वर तथा बलाघात से सम्बन्ध तत्व का बोध होता है। कतिपय भाषाओं में इनका विशेष महत्व है। वैदिक संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं में स्वर का विशेष महŸव था।

5. अपश्रुति (आन्तरिक परिवर्तन)

अन्तर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाओं में अर्थतत्व अर्थात् मूल शब्द के मूल में सम्बन्ध तत्व मिल जाता है। जैसे- दशरथ , पुत्र से पौत्र, भवत् से भवदीय, प्रशस्य से श्रेयान् यशस् से यशस्वी, माया से मायावी आदि।

6. द्वित्व ध्वनियों या शब्दों की कई बार आवृत्तियों से सम्बन्ध तत्व का ज्ञान होता है। यह

आवृत्तियों अर्थ तत्व के प्रारम्भ, मध्य एवं अन्त में हो सकती है। जैसे - पंट्पटाकरोति। दिनं -दिनं प्रति = प्रतिदिनम् ।

7. ध्वनि विनियोजन

अर्थतत्व की ध्वनियों को कम करके अथवा बढा़कर सम्बन्ध तत्व को बना लिया जाता है। जैसे- प्रशस्य शब्द के ज्येष्ठ।

8- अभावात्मक-

जब अर्थ तत्व (मूल शब्द) में कुछ जोडा़ नहीं जाता तथा शब्द से ही सम्बन्ध तत्व का काम निकाल लिया जाता है, तो उसे अभावात्मक या शून्य सम्बन्ध तत्व कहते हैं। संस्कृत में इस प्रकार के शब्द विद्युत्, मरूत्, नदी, जल, मुक्, वारि आदि हैं। इनके ये रूप ही बिना विकार के प्रथमा एक वचन को प्रकट करते हैं। अतः इनमें शून्य सम्बन्ध तत्व का बोध होता है।

1.4.3 सम्बन्ध तत्व तथा अर्थतत्व का सम्बन्ध।

सम्बन्ध तत्व तथा अर्थतत्व में पारस्परिक सम्बन्ध सब भाषाओं में समान नहीं माना जाता है। इन दोनों में सम्बन्ध इस प्रकार होते हैं।-

1. पूर्ण सहयोग-

जब अर्थतत्व और सम्बन्ध तत्व परस्पर घनिष्ठ भाव से मिल जाते हैं तो उसे पूर्ण सहयोग कहते हैं। एक ही शब्द के द्वारा दोनों तŸवों का बोध होता है। संस्कृत भाषा में विभिन्न शब्द रूपों में अर्थतत्व तथा सम्बन्ध तत्व परस्पर घनिष्ठ भाव से मिल जाते हैं। जैसे रामः (राम ने), रामम् (राम को), रामाय (राम के लिए) आदि रूप हैं। अंग्रजी में भी इस प्रकार के शब्द पाये जाते हैं, जैसे - ब्रिंग (bring) से ब्राट (brought)।

2. अपूर्ण संयोग

इस प्रकार के संयोग में किसी शब्द में मिलने वाले अर्थ तत्व तथा सम्बन्ध तत्व पूरी तरह, से मिलत नहीं अपितु दोनों की सत्ता बनी रहती है और उन्हें शब्द में स्पष्टता तथा पहिचाना जा सकता है। इनका संयोग तिलतण्डुलवत् होता है, नीरक्षीरवत् नहीं।

जैसे - पुस्तकम् (पुस्तक अम्)।

केशवः (केश व)।

मेधावी (मेधा विन्) इत्यादि।

3. दोनों स्वतंत्र

कुछ भाषाओं में अर्थतत्व तथा सम्बन्ध तत्व दोनों की सत्ता पूरी तरह से स्वतंत्र होती है। जैसे - संस्कृत में इति, वा, तु, न आदि।

4. अर्थतत्व तथा सम्बन्धतत्व की समानता ।

कुछ भाषाओं में प्रत्येक अर्थतत्व के साथ एक सम्बन्धतत्व जोडा जाता है। अतः दोनों की संख्या समान होती है। वाक्य में एक सम्बन्धत्व के स्थान पर कई सम्बन्धतत्व हो जाते हैं। अतः सम्बन्धतत्व का आधिक्य हो जाता है।

जैसे- रामाः = राम जस्, अर्थात् अनेक राम।

फलानि = फल जस्, अर्थात् अनेक फल।

कपयः = कपि जस्, अर्थात् बहुत से वानर।

स्त्रियः = स्त्री जस्, अर्थात् बहुत सी स्त्रियाँ।

सम्बन्धतत्व से मुख्य रूप से लिंग, पुरूष, वचन, कारक एवं काल आदि की पहचान होती है। यही सम्बन्धतत्व के प्रमुख कार्य भी कहे जा सकते हैं।

लिंग

संस्कृत मे तीन प्रकार के लिंग होते हैं-पुँल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग। निर्जीव वस्तुओं को नपुंसक लिंग में रखते हैं। संस्कृत में एक ही शब्द या उसके समानार्थी स्त्रीलिंग, पुँल्लिंग तथा नपुंसक लिंग तीनों में पाये जाते हैं। जैसे - स्त्री का बोधक 'दारा' शब्द पुँल्लिंग है तथा 'कलत्रम्' नपुंसक लिंग है। 'पुस्तकम्' नपुंसक लिंग है। लेकिन 'ग्रन्थ' पुँल्लिंग है । कुछ शब्द सदैव पुँल्लिंग में प्रयोग किये जाते हैं। यद्यपि उनमें स्त्रीलिंग जाति (मादा) भी पायी जाती है। इसी प्रकार कुछ जीवों के सूचक शब्द स्त्रीलिंग में होते हैं, यद्यपि उनमें पुरूष (चर) जाति भी पायी जाती है। लिंग दो प्रकार से व्यक्त किये जातो हैं।-

1. प्रत्यय संयुक्त करके

जैसे - अज शब्द से टाप् प्रत्यय करके अजा बनता है।

कुमार शब्द से ङीप् प्रत्यय करके कुमारी बनता है।

इन्द्र शब्द से ङी्ष् तथा आनुक् होकर इन्द्राणी शब्द बनता है।

2. स्वतंत्र शब्द जोड़कर

इसके उदाहरण - अंग्रजी भाषा में प्रायः प्राप्त होते हैं।

नर के साथ भ्म तथा मादा के साथ ैीम का प्रयोग करते हैं।

जैसे - भ्म हवंज (बकरा) और ैीम हवंज (बकरी)।

3. विपरीत शब्द प्रयुक्त करके

जैसे- भ्राता (पुँल्लिंग)

भगिनी (स्त्रीलिंग)

पिता (पुँल्लिंग)

माता (स्त्रीलिंग)

वर (पुँल्लिंग)

वधू (स्त्रीलिंग)

पुरूष- पुरूष तीन प्रकार के होते हैं प्रथम पुरूष, मध्यम पुरूष , उत्तम पुरूष ।

पुरूषों के प्रयोग के आधार-पर क्रिया -रूपों में अन्तर हो जाता है। जैसे - सः गच्छति = वह जाता है। त्वम् गच्छसि = तुम जाते हो। अहं गच्छामि = मैं जाना हूँ।

वचन- संस्कृत में तीन वचन होते हैं-एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। वचन के प्रयोग से संज्ञा, क्रिया एवं विशलेषण रूपों में अन्तर आ जाता है।

जैसे -	बालकः पठति	=	बालका पढ़ता है।
	बालकौ पठतः	=	दो बालक पढ़ते हैं।
	बालकाः पठन्ति	=	बालक पढ़ते हैं।

कारक - कारकों अर्थात् कर्ता, कर्म, करण, स्मप्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन के प्रयोग के द्वारा सम्बन्ध तत्व का ज्ञान होता है। जैसे- रामेण बाणेन हतो बाली। यहाँ राम में कर्ता और बाणेन में करण का प्रयोग हुआ है।

काल-

अर्थात् समय तीन भागों मे विभक्त होता है-

1. वर्तमान काल

2. भूतकाल और

3, भविष्य काल।

पुनः उनके उपभेद किये जाते हैं। भिन्न-भिन्न कालों को प्रकट करने के लिए स्मबन्ध तत्त्वों की साध्यता ली जाती है। संसार की अनके भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से काल के विभाजन किये गये हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत में केवल भूतकाल के ही तीन भेद हैं- अनद्यतन, परोक्ष तथा सामान्य। अनद्यतन के लिए लङलकार का प्रयोग होता है, परोक्ष भूतकाल के लिए लिट् लकार का प्रयोग होता है और सामान्य भूतकाल के लिए लृङ् लकार का प्रयोग होता है। वर्तमान काल में लट् लकार का प्रयोग होता है। भविष्य काल के लिए लुट् और लृट् लकारों का प्रयोग होता है।

संस्कृत में 10 लकार हैं, जो कि विभिन्न स्थितियों के लिए प्रयुक्त होती है, जैसे विधि आदि के लिए विधिलिङ् लकार का प्रयोग होता है।

वाच्य - संस्कृत भाषा में तीन वाच्य पाये जाते है।-

1. कर्तृवाच्य,
2. कर्मवाच्य,
3. भाववाच्य,

जब किसी वाक्य में कर्ता पर अधिक बल दिया जाता है तो उसे कर्तृवाच्य कहते हैं, जब वाक्य में कर्म पर अधिक बल दिया जाता हैं तो उसे कर्मवाच्य नाम दिया जाता है तथा जब क्रिया पर अधिक बल दिया जाता है तो उसे भाववाच्य नाम दिया जाता है। इन तीनों रूपों में कर्मवाच्य में सकर्मक का एंव भाववाच्य में अकर्मक धातुओं का प्रयो किया जाता है। वाच्य के निर्माण में सम्बन्ध तत्व की अपेक्ष होती है।

पद- संस्कृत में दो प्रकार की धातुएँ पाई जाती है।

1. आत्मनेपदी तथा
2. परस्मैपदी।

जब क्रिया का फल कर्ता के लिए होता है तो उसे आत्मनेपद कहते हैं, परन्तु जब क्रिया का फल दूसरे को प्राप्त होता है तो उसे परस्मैपद कहते हैं। ''पुस्तकं लभते'' यहाँ लभते रूप आत्मनेपदीय है किन्तु 'पुस्तकं पठति ' में पठति' रूप परस्मैपदीय है। प्रेरणार्थक इच्छार्थक, आदि क्रिया के भेद हैं।

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं-

1. किसी शब्द का वाक्य में जो रूप प्रयुक्त होता है, उसे पद कहते है।
2. अव्यय पदों को छोड़ कर वाक्य में प्रयुक्त होकर शब्द में कुछ परिवर्तन या विकार हो जाता है।
3. महर्षि पाणिनि का कथन है कि सुबन्त, और तिङन्त को पद कहते हैं।
4. जब किसी शब्द के आगे कोई सुप् तिङ् प्रत्यय जुड़ता है, तभी वह पद कहलाता है।
5. संस्कृत में सु, औ, जस् आदि 21 प्रत्यय सुप् कहलाते हैं
6. तिप्, तस्, झि, आदि 18 प्रत्यय तिङ् कहलाते हैं।
7. महर्षि पतंजलि का स्पष्ट अभिमत है कि न तो केवल प्रकृति का प्रयोग करना चाहिए और न प्रत्यय का।
8. वाक्य में प्रयुक्त पद दो भागों में विभक्त हैं। प्रथम भाग से अर्थ का ज्ञान होता है जो कि मूल रूप में रहता है।
9. द्वितीय भाग मूलरूप से संयुक्त होकर अर्थ प्रकट करता है।
10. प्रथम भाग को अर्थ तत्व और द्वितीय भाग को सम्बन्ध तत्व कहते हैं।

1.6 शब्दावली

सुप्-

संस्कृत में 21 प्रत्ययों को सुप् कहते हैं। प्रथमा विभक्ति के एकवचन के सु से लेकर सप्तमी विभक्ति के बहुवचन के सुप् पर्यन्त प्रत्ययों को सुप् कहते हैं।

विभक्ति-

संस्कृत में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, पष्ठी और सप्तमी को विभक्ति कहते हैं।

तिङ्ग -

तिङ्ग प्रत्याहार मे तिप् से लेकर महिङ् तक 18 प्रत्यय होते हैं।

सम्बन्ध तत्व -

सम्बन्ध तत्व अर्थात तत्वों के पारस्परिक सम्बन्ध को बताता है। वाक्य के गठन के लिए सम्बन्ध तत्व की आवश्यकता होती है।

अर्थ तत्व -

इसके द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है। यह मूल रूप में रहता है। स्वतन्त्र शब्द- स्वतन्त्र शब्द के प्रतीक अपनी स्वतन्त्र रखते रहते हैं। जैसे- अथ, इति, वा, व आदि।

प्रत्यय-

अर्थ तत्व के साथ सम्बन्ध तत्व प्रारम्भ और अन्त में आवश्यकतानुसार जोड़े जाते हैं। इन्हें प्रत्यय कहते हैं।

जैसे - विनता उदात्त ढक् - वैनतेय।

बुद्धि मतुप् - बुद्धिमान।

अपश्रुति -

अन्तर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाओं के अर्थतत्व अर्थात् मूल शब्द के मूल में सम्बन्ध तत्व मिल जाता है। जैसे - माया से मायावी।

द्वित्व-

ध्वनियों या शब्दों की कई बार आवृत्तियों से सम्बन्ध तत्व का ज्ञान होता है।

जैसे - पदपटाकरोति।

ध्वनिविनियोजन-

अर्थ तत्व की ध्वनियों को कम करके अथवा बढ़ाकर सम्बन्ध तत्व को बना लिया जाता है। जैसे- प्रशस्य से श्रेष्ठ और ज्येष्ठ।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उतर

प्रश्न 1- संस्कृत में पद किसे कहते हैं?

उत्तर - सुबन्त और तिङन्त को पद कहते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी शब्द के आगे जब कोई सुप प्रत्यय जुड़ता है तभी वह पद कहलाता है।

प्रश्न 2- सुप् किसे कहते हैं?

उत्तर - सु से प्रारम्भ कर सुप् पर्यन्त प्रत्ययों का प्रत्याहार सुप् कहलाता है।

प्रश्न 3 - सुप् प्रत्ययों का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - सुप् प्रत्यय इस प्रकार हैं-

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी	ङसि	भ्यास्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

इस प्रकार 'सु' से लेकर 'सप्' के 'प्' तक 'सुप्' कहलाता है। इस सुप् के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी 21 प्रत्यय आ जाते हैं।

प्रश्न 4 - सम्बोधन में किस विभक्ति का प्रयोग होता है?

उत्तर - सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है।

प्रश्न 5 - तिङन्त किसे कहते हैं?

उत्तर - तिप् के ति से लेकर महिङ् के ङ् पर्यन्त तिङ् प्रत्याहार कहलाता है। तिप्, तस् आदि में सेकिसी भी प्रत्यय से युक्त क्रिया पद को तिङ्न्त कहते हैं।

प्रश्न 6 - परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्ययों को उल्लेख कीजिए।

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरूष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरूष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	त	आताम्	झ
मध्यम पुशष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरूष	इट्	वहि	महिङ्

प्रश्न 7 - क्या केवल प्रकृति या प्रत्यय का प्रयोग किया जा सकता है?

उत्तर - नहीं। केवल प्रकृति या प्रत्यय का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न 8 - वाक्यों में प्रयुक्त पदों को कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है?

उत्तर - वाक्यों में प्रयुक्त पदों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. मूल शब्द।

2. मल शब्द से जुड़ने वाले सम्बन्ध बोध क शब्द्, पद और विभक्ति आदि।

प्रश्न 9 - सम्बन्ध तत्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर - 1. स्वतन्त्र शब्द।

2, शब्द स्थान।

3. प्रत्यय।

4, ध्वनिगुण।

5, अपश्रुति।

6, द्वित्व।

7, ध्वनिविनियोजन

8, अभावात्मक।

प्रश्न 10 - शब्द तत्व और अर्थतत्व में पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार होते हैं?

उत्तर - शब्द तत्व और अर्थतत्व में पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार होते हैं-

1. पूर्ण सहयोग।
2. अपूर्ण सहयोग।
3. दोनो स्वतन्त्र
4. अर्थ तत्व तथा सम्बन्ध तत्व की समानता।
5. लिङ्ग।
6. पुरूष।
7. वचन।
8. कारक।
9. काल।
10. वाच्य।

(ख-)

प्रश्न 1 - सुप् कितने हैं?

(क) 15 (ख) 18

(ग) 21 (घ) 25

उत्तर - (ग) 21

प्रश्न 2- सम्बोधन में होती है-

(क) प्रथमा (ख) चतुर्थी

(ग) षष्ठी (घ) सप्तमी

उत्तर - (क) प्रथमा।

प्रश्न 3- तिङ् कितने हैं?

(क) 10 (ख) 12

(ग) 18 (घ) 24

उत्तर - (ग) 18

प्रश्न 4- परस्मैपद के कितने प्रत्यय हैं?

(क) 9 (ख) 12

(ग) 15 (घ) 18

उत्तर - (क) 9।

प्रश्न 5 - आधाम् प्रत्यय है -

(क) परस्मैपदी (ख) आत्मेनपदी

(ग) उभय पदी (घ) कोई नहीं

उत्तर - (ख) आत्मनेपदी।

प्रश्न 7- संस्कृत में कितनी विभक्तियाँ हैं -

(क) 6 (ख) 7

(ग) 8 (घ) 9

उत्तर - (ख) 7।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कृत पद-संरचना पर प्रकाश डालिए।
2. सम्बन्ध तत्त्वों का निरूपण कीजिए।
3. सम्बन्ध तत्त्वों और अर्थ तत्व के सम्बन्ध पर प्रकाश डालिये।
4. संस्कृत के वाच्यों का निरूपण कीजिए।

(ख) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1. सुबन्त
2. तिङन्त
3. परस्मैय पद प्रत्यय
4. आत्मनेपद प्रत्यय
5. सम्बन्ध -तत्व
6. अर्थतत्व
7. पुरूष
8. वचन
9. कारक
10. काल
11. लकार

इकाई 2. उपसर्ग तथा निपात

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा में उपसर्गों तथा निपातों का विशेष महत्व है। इनके द्वारा सम्यक् अर्थ के प्रकाशन में विशेष सहायता प्राप्त होती है। ये अर्थ को प्रभावित करने में विशेष सक्षम हैं।

प्रस्तुत इकाई में उपसर्गों एवं निपातों का सम्यक् , अनुशीलन किया गया है। उपसर्गों के द्वारा धातु का अर्थ बलपूर्वक परिवर्तित कर दिया जाता है। निपात अनेक अर्थों को प्रकट करने में सक्षम है। संस्कृत वैयाकरणों ने इनका विशेष रूप से निरूपण किया है।

इस इकाई में निपातों और उपसर्गों से सम्बन्धित विविध प्रकार की सामग्री प्रस्तुत की गयी है, जिससे आप उपसर्गों और निपातों के स्वरूप, प्रकृति तथा प्रयोजन को समझा सकेंगे और इस विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप-

1. संस्कृत के उपसर्गों को जान सकेंगे ।
2. संस्कृत के निपातों को समझ सकेंगे ।
3. उपसर्गों के द्वारा बलपूर्वक अर्थ बदल दिया जाता है, इसकी जानकारी कर सकेंगे।
4. संस्कृत भाषा में प्र, पर आदि उपसर्गों का विशेष महत्व है, यह जान सकेंगे।
5. निपात अनके प्रकार के अर्थों के प्रकट करन में सक्षम है, यह जान सकेंगे।
6. निपात अर्थ को प्रभावित करने में कितन सक्षम है? इसे जान सकेंगे।
7. उपसर्गों और निपातों का वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में महत्व है, इसकी जानकारी कर सकेंगे।
8. भाषा विज्ञान की दृष्टि से इनका विशेष महत्व है, यह जान सकेंगे।
9. ये साहित्यिक भाषा को भी प्रभावित करने में सक्षम है, यह जान सकेंगे।

2.3 उपसर्ग तथा निपात- अर्थ एवं स्वरूप

उप+ सृज्+ घञ = उपसर्ग। उपसर्ग प्रायः क्रिया से पूर्व प्रयुक्त होते हैं और उसके अर्थकोपरिवर्तित कर देते हैं। (उपसर्गाः क्रियायोगे) इस विषय में एक कारिका भी प्रसिद्ध है-

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

अर्थात् उपसर्ग के द्वारा धातु का अर्थ बलपूर्वक अन्यत्र ले जाया जाता है, अर्थात् परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे एक ही 'हृ' धातु से निष्पन्न 'हार' शब्द से उपसर्गों के द्वारा प्रहार, आहार, संहार, विहार और परिहार बन जातो हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपसर्ग अपनी शक्ति के द्वारा पद का अर्थ बदल देते हैं।

निपाद शब्द की निष्पति नि उपसर्ग पूर्वक पत् धातु का घञ् प्रत्यय के लगने से है। आचार्य यास्क का कथन है कि निपात अनेक अर्थों को प्रकट करने वाले होते हैं। अतएव निपात के विषय में कहा गया है कि वे बहुविध अर्थों को प्रकट करते हैं। 'च', 'वा', 'इव', 'अथवा', आदि निपातों की निष्पत्ति प्रकृति प्रत्ययों के आधान पर नहीं की जाती है। बृहद्देवता के रचयिता महर्षि शौनक निपातों को तीन वर्गों में परिगणित करते हैं।

1. कर्मोपसंग्रहं।
2. उपमार्थक
3. पदपूरण के लिए।

कर्मोपसंग्रहार्थे च क्वचिच्चौपम्यकारणात् ।
ऊनानां पूनणार्था वा पदानामपरे क्वचित्।।(2/13- 94)

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसंगानुकूल निपात विविध अर्थों को प्रस्तुत करते हैं।

2.4 उपसर्ग तथा निपात

2.4.1 उपसर्ग-विमर्श

जब प्र, परा आदि उपसर्ग किसी धातु के आदि में आकर उसके अर्थ में विशेषता उत्पन्न कर देते हैं या उसके अर्थ को ही परिवर्तित कर देते हैं तो वे उपसर्ग कहलाते हैं। (उपसर्गाः क्रियायोगे) इस विषय में एक कारिका भी प्रसिद्ध है-

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।।

अर्थात् उपसर्ग के द्वारा धातु का अर्थ बलपूर्वक अन्यत्र ले जाया जाता है, अर्थात् परिवर्तित कर दिया जाता है। जैसे एक ही 'हृ' धातु से निष्पन्न 'हार' शब्द से उपसर्गों के द्वारा प्रहार, आहार, संहार, विहार और परिहार बन जातो हैं।

संस्कृत के 'प्र' आदि उपसर्ग और उनका अर्थ इस प्रकार है-

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
प्र	अधिक, प्रकृष्ट	प्रहरति, प्रलपति

परा	निषेध, विरोध	पराजयते
अप	हीनता, न्यूवता	अपाकरोति, अपहरति
सम्	अच्छा	संवदति
अनु	पीछे	अनुसरति, अनुगच्छति
अव	समझना, नीचे	अवगच्छति, अवतरति
निस्-निस्	निषेध	निर्गच्छति
दुस्-दुस्	कठिन	दुश्शास्ति, दुराचरति
वि	विभिन्न,विशिष्ट, रहित	विजयते, विलपति
आङ् (आ)	सीमा, ग्रहण, विरोध आदि	आगच्छति
नि	निषेध, नीचे	निषेधति
अधि	प्रधानता, समीपता व उपरिभाव	अधिगच्छति
अति	अतिशय तथा उत्कर्ष	अतिशेते
सु	अच्छा	सुशोभते
उत्	ऊपर, ऊँचा	उत्तिष्ठति
अभि	पास, सामेन	अभिगच्छति
प्रति	प्रत्येक, बराबरी, विरोध, परिवर्तन	प्रतिभाषते
परि	आस-पास, चारों ओर	परिचरति
उप	पास, अमुख्य छोटा	उपगच्छति

विशेष- कहीं-कहीं एक से अधिक उपसर्गों का मिलकर प्रयोग हो जाता है। जैसे

वि+ अव+ हरति = व्यवहरति

अभि + नि+ विशते = अभिनिविशते

उपसर्गों से युक्त कतिपय संस्कृत वाक्यों का अवलोकन करें-

1. रमेशः गच्छति = रमेश जाता है पुष्पा आगच्छति = पुष्पा आती है।

2 सा गच्छति = वह जाती है। सुरेश उपगच्छति = सुरेश पास जाता है।

3 सः नयति = वह ले जाता है। कल्पना आनयति = कल्पना लाती है।

4 अहं पतामि = मैं गिरता हूँ अहम् उत्पतामि = मैं ऊपर उठता हूँ।

5 वयं वदामः = हम लोग बोलते हैं। वयं प्रतिवदामः = हम लोग उतर देते हैं।

6. त्वं सरसि = तुम सरकते हो। त्वम् अनुसरसि = तुम पीछे-पीछे आते हो।

7. शीला भाषते = शीला बोलती है। रमा प्रतिभाषते = रमा उतर देती है।

8 यूयं हरथ तुम सब ले जाते हो। अहम् अपहरामि = मैं चुराता हू ।

यहा हम देखते हैं कि उपसर्गों के प्रयोग से धातुओं का अर्थ बदल रहा है। उपसर्गों के प्रयोग से गम्-गच्छ् = जाना। धातु का अर्थ इस प्रकार बदल रहा है।

अवलोकन करें-

गच्छति = जाता है।
आगच्छिति = आता हे।
संगच्छते = संगत होता है।
निर्गच्छति = निकलता है।
अनुगच्छति = पीछे जाता है।
अवगच्छति = जानता है।
अधिगच्छति = प्राप्त करता है।
अभ्यागच्छति = सामने आता है।
प्रतिगच्छति = लौटता है।
अभ्युपगच्छति = स्वीकार करता है।
उद्गच्छति = ऊपर जाता है।

अपगच्छति = दूर हटता है।

कभी-कभी उपसर्गों का प्रयोग क्रियापदों के अतिरिक्त संज्ञा शब्दों से भी होता है। जैसे-

सु पुरूषः = सुपुरूषः

प्र+ आचार्यः = प्राचार्यः

उप राष्ट्रपति = उपराष्ट्रपतिः

इस प्रकार हम देखते हैं कि पदो की संरचना में उपसर्गों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये उपसर्ग पद का अर्थ बदल देते हैं।

2.4.2 निपात विमर्श

निपात के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए आचार्य यास्क लिखते हैं कि ये निपात अनेक प्रकार के अर्थों में गिरते हैं अर्थात् अनेक प्रकार के अर्थों को प्रकट करने वाले होते हैं । कोई निपात उपमा के अर्थ में, कोई अर्थोंपसंग्रह के अर्थ में और कुछ केवल पदपूर्ति के लिए प्रयुक्त होते हैं-

अथ निपाता उच्चावचेषु अर्थेषु निपतन्ति ।

अप्युपमार्थे, अपि कर्मोपसंग्रहार्थे, अपि पदपूरणाः।।

निपात शब्द की निष्पत्ति नि उपसर्गपूर्वक पत् धातु में घञ् प्रत्यय के प्रयोग से होती है। कतिपय आचार्यों का अभिमत है कि जिस किसी प्रकार ये शब्द प्रयोग में आने लगे हैं जिनकी निष्पत्ति नहीं की जा सकती , जिनके प्रकृति-प्रत्यय के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है। इसीलिए इनका अर्थ निपात पड़ा । अतएव-

1. जो बहुधि अर्थों का प्रकट करें ।

2. जिनकी निष्पत्ति प्रकृति- प्रत्यय के आधार पर नहीं की जा सकती। आचार्य यास्क ने सामान्य रूप से इन निपातों का तीन भागों में वर्गीकरण किया है-

1. उपमार्थक - उपमा (सादृश्य) अर्थ में प्रयुक्त होने वाले, इव, न, चित्, नु आदि।

2. कर्मोपसंग्रहार्थक - अर्थोंपसंग्राहक - अनेक अर्थों को साथ-साथ प्रकट करने वाले या दूसरे अर्थ का भी संग्रह करने वाले। यहाँ भी पूर्ववत् (‘कर्मोपसंयोगद्योतकाः उपसर्गाः के समान) ही ‘कर्म’ शब्द का प्रयोग ‘अर्थ या अभिप्राय’ अर्थ में हुआ है। निरूक्त में ‘कर्म’ शब्द बहुधा ‘अर्थवाची’ ही प्रयुक्त हुआ है। इस कोटि में च, वा, अह, उ, हि, किल, खलु आदि शब्द आते हैं।

3. पदपूरण- जिनका प्रयोग मन्त्रों में केवल ‘पदपूर्ति’ अथवा चरणपूर्ति मात्र के लिए ही हुआ है,

किसी विशेष अभिप्राय के प्रकट करने के लिए नहीं, जैसे- नूनम् ननु, सीम्, त्व आदि।

बृहद्देवताकार महर्षि शौनक ने भी निपातों को इन्हीं तीन वर्गों में परिगणित किया है-

कर्मोपसंग्रहार्थे च क्वचिच्चौपम्यकारणात् ।

ऊनानां पूनणार्था वा पदानामपरे क्वचित् ।। (2/13- 94)

उपमार्थक निपात के विषय में आचार्य यास्क का मत है कि उपमार्थक इव निपात लौकिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत दोनों में ही प्रयुक्त होता है-

'इव' इति भाषायां च, अन्वध्यायञ्च। अग्निरिव, इन्द्र इवेति ।।

न निपात का प्रयोग लौकिक संस्कृत भाषा में निषेधार्थक है। जबकि वैदिक संस्कृत में प्रतिषेध और उपमा बोधक शब्दों का बोधक है। यथा- (अ) इन्द्र को देव नहीं माना- यहाँ 'न' प्रतिषेधार्थक है। उस 'न' का (प्रतिषेध्य) पहले प्रयोग होता है जो प्रतिषेध करता है। (आ) दुर्मद = बहुत घमण्डी या उन्मत व्यक्ति। जैसे सुरा- मदिरा के विषय में यहाँ 'न' उपमा सादृश्य बोधक है। उस 'न' का उपमान के पश्चात् प्रयोग होता है जिसके द्वारा सादृश्य प्रस्तुत किया जाता है।

आचार्य यास्क ने इव और न के अतिरिक्त चित् , च, अ, व, ह, उ, ही, किल, नु, मा, खलु, नूनम्, अद्य, स्व, इम्, अद्भुतम्, अनन्य, , आधीतम् सीम्, कम्, इम्, इत्, नेति, त, चेत्, आदि निपातों को उद्धृत किया है। निरूक्त में निपातों का त्रिविध निरूपण हुआ है और निपातों की चर्चा इस प्रकार हुयी है-

क- उपमार्थीय इव, न, चित् न आदि।

ख- कर्मोपसंग्रहार्थीय - च, वा, अह, ह, उ, आदि।

ग- विभिन्नार्थक - नहि, किल, ननु, मा, खलु, शश्वत्, नूनम्, सीम् आदि।

घ - पदपूरण - कम्, ईम्, इत्, उ, इव आदि।

ड - समुदायनिपात - न च इत् = नचेत्, च इत् = चेत् आदि।

च - सीमतः त्व तथा त्वत्, निपात नहीं अपितु प्रातिपदिक (नाम) हैं- इनमें 'त्व' और 'त्वत्' सर्वनाम है।

महर्षि पाणिनि ने अपने सूत्रों में स्वरादि निपात को अव्ययसंज्ञयक कहा है। स्वरादि- निपातमव्ययम् (अष्टध्यायी 1/1/37) । भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी में निपातों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

स्वर् (स्वः)- स्वर्ग। अन्तर् (अन्तः)- मध्य । प्रातर् (प्रातः) - प्रातः काल । पुनः फिर । सनुतर (सतुतः) - अन्तर्धान । उच्चैस् (उच्चैः)- ऊर्ध्वभाग में। नीचैम् (नीचैः)- अधोभाग में। शनैस् (शनैः) -धीरे-धीरे। ऋधक्- सचमुच। ऋते- विना। युगपत् - एकसाथ। आरात्-दूर या समीप में । पृथक्-भिन्न। (ह्यः) - ह्यः पूर्व दिन में। श्वः- पर दिन में। दिवा-दिन। रात्रौ-रात में । सायम्-संध्या में। चिरम्-विलम्ब । मनाक्-थोडा। ईषत् बहुत थोडा, विञिचत्। जोषम् -काना- फूँसी। तूष्णीम् -चुप। बहिस् (बहिः), अवस् (अव्) - बाहर। अधस् (अधः)- नीचे। समया, निकषा -समीप। स्वयम्-अपने ही। वृथा-व्यर्थ। नक्तम् - रात। न, नञ्-नहीं। हेतौ-कारण। इद्धा -प्रकाश्य। श्रद्धा -स्फुट । सामि -आधा। ब्राह्मणवत्-ब्राह्मण के सामान। क्षत्रियवत् -क्षत्रिय के समान। सना, सनत्, सनात् - नित्य। उपधा -घूस, न जराना। तिरस् (तिरः) - टेढा, पराभव। अन्तार -मध्य, विना। अन्तरेणा -विना । ज्योक्-शीघ्र, सम्प्रति। कम्-जल, निन्दा, सुख। शम्-सुख, कल्याण। सहसा- अकस्मात्। विना -अभाव। नाना- अनेक। स्वस्ति -मंगल, शुभ। स्वाहा - देव हवि- र्दान में। स्वधा-पित्हविर्दान में। अलम् -भूषण, पर्याप्त (बस), व्यर्थ । वषट् श्रौषट्, वौषट् - देवहविर्दान में। अन्यत् -और, दूसरा। अस्ति -सत्ता, विद्यमान। उपांशु -गुप्त। क्षाम-माफ। विहायसा-आकाश। दोषा -रात्रि । मृषा, मिथ्या-असत्य , झूठ। मुधा - व्यर्थ ही, निष्प्रयोजन। पुरा -पहले। मिथो, मिथस् (मिथः) - परस्पर, एकान्त। प्रायस् (प्रायः) -सम्भव, हो सकता है। मुहुस (मुहुः) बार-बार। सार्धम् -साथ। नमस् (नमः)- नमस्कार, प्रणाम। हिरूक् -बिना। धिक् -धिक्कार, छी-छी। अथ - अनन्तर , और अथकिम् -और नहीं तो क्या?। अम् -शीध्र, थोडा, किंचित। आम् -हाँ, स्वीकार, मञ्जूर। प्रताम्- ग्लानि। प्रशास् -नसमान। प्रतान -विस्तार। मा, माङ्-नहीं, अस्वीकार । च पुनः, अथवा और। वा -अथवा। ह - प्रसिद्ध। अह -अद्भुत, खेद। एव -अवश्य, ही। एवम् -इस प्रकार। नूनम् -निश्चय, तर्क। शश्वत् -सदा, साथ-साथ, पुनःपुनः। युगपत् -एक साथ। भूयस् (भूयः) -पुनः प्रचुर, ढेरसा। कूपत्, सपूत्-प्रश्न, प्रशंसा। कुवित् -बहुत, प्रशंसा। नेत्-शंका। चेत् चण -यदि। क्वचित् -प्रश्न, कोई । यत्र- जहाँ । नह - प्रत्यारम्भ हन्त-हर्ष, विषाद । माकिः, माकिम् नकिः-विना, वर्जन। नञ्-नहीं। यावत् -जब तक। त्वै, द्वै, न्वै –वितर्क । रै - दान, हीन सम्बोधन। श्रौषट्, वौषट्, स्वाहा - देवहविर्दान। अलम् -पर्याप्त। स्वधा - वषट् –पित्हविर्दान । तुम-तुम। तथाहि -जैसे, इस प्रकार। खलु, किल- निश्चय। अथ -अनन्तर। सुष्ठु-अच्छा। स्म- भूतकाल । आदह –निन्दा । अवदत्ताम् -दिया। अहंयुः -अहंकारी। अस्तिक्षीरा -दूधवाली। अ - सम्बोधन, जुगुप्सा विस्मय। ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ - सम्बोधन। पशु-सम्यक्। शुकम् -शीध्र। यथाकथाच -जब कभी। पाट् प्याट्, अहं हे, है, भो- अये- सम्बोधन। घ - हिंसा। विषु -अनेक । एकपदे - सहसा। युत्-निन्दा। आतः अतः, इसलिए।

संस्कृत के निपात वाक्यरचना में विशेष महत्व रखते हैं। इनके द्वारा प्रसंगानुकूल विविध अर्थ प्रस्तुत

हो जाते हैं। जैसे - रमेशः सुरेशश्च विद्यालयं गच्छताम्। अर्थात् रमेश और सुरेश विद्यालय जायें। यहाँ प्रयुक्त च निपात समुच्चय का बोधक है।

रमेशः सुरेशो वा गीतां पठतु।

रमेश अथवा सुरेश गीता को पढें। प्रस्तुत पद में प्रयुक्त वा निपात वैकल्पिकक भाव को प्रकाशित कर रहा है। इस प्रकार संस्कृत वाक्यरचना में निपातों का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है।

2.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं-

1. उपसर्गों के द्वारा बलपूर्वक अर्थ परिवर्तित कर दिया जाता है।
2. प्र, परा आदि महत्वपूर्ण उपसर्ग है।
3. ''हरति'' के पूर्व जब प्र उपसर्ग को जोड़ देते हैं तो ''प्रहरति'' का अर्थ प्रहार करता है, हो जाता है।
4. कहीं-कहीं एक से अधिक उपसर्गों का मिलकर प्रयोग हो जाता है। जैसे - विउदात्त अवउदात्त हरति = व्यवहरति।
5. निपात अनेक प्रकार के अर्थो को प्रकट करते हैं।
6. निपातों की निष्पत्ति प्रकृति प्रत्यय के आधार पर नहीं की जा सकती।
7. कभी-कभी निपातों की प्रयोग पदपूर्ति के लिये भी होता है।
8. निपातों को अव्यय संज्ञक कहा गया है।
9. निपातों का प्रयोग वैदिक एवं लौकिक संस्कृत में हुआ है।

2.6 शब्दावली

उपसर्ग संस्कृत पद सरंचना में विशेष महत्व रखते है। इसके द्वारा धातु एवं शब्द का अर्थ परिवर्तित कर दिया जाता है।

गच्छति = जाता है।

आगच्छति = आता है।

व्यवहरति = यहाँ वि और आव इन दो उपसर्गा का प्रयोग हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कहीं -कहीं उपसर्गों का दो या अधिक मिलकर प्रयोग होता है।

उत् - इस उपसर्ग का प्रयोग ऊपर या ऊँचा के अर्थ में होता है।

जैसे - उत्तिष्ठति।

प्राचार्यः - यहाँ आचार्य से पूर्व 'प्र' उपसर्ग का प्रयोग हुआ है।

निपात - नि + पत् + घञ् - निपात। आचार्य यास्क लिखते हैं कि ये निपात अनेक प्रकार के अर्थों में गिरते हैं। अर्थात् अनेक प्रकार के अर्थों को प्रकट करते हैं। इसलिए इन्हें निपात कहते हैं।

कर्मोपसंग्रहार्थक - अनेक अर्थों को बार-बार प्रकट करने वाले या दूसरे अर्थ का भी संग्रह करने वाले।

उपमार्थक - उपमा अर्थात् सादृश्य अर्थ में प्रयुक्त होने वाले इव आदि पद।

पूरणार्थक - जिनका प्रयोग केवल पद्पूर्ति अथवा चरण पूर्ति मात्र के लिए होता है।

जैसे - नूनम्, सीम् आदि।

समुदाय निपात- जिनका प्रयोग समुदाय के अर्थ में होता है। च, न , इत् नचेत्।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1 - संस्कृत वाक्यसंरचना में उपसर्ग क्या करते हैं?

उत्तर - संस्कृत वाक्यसंरचना में उपसर्ग धातु या शब्द के अर्थ को परिवर्तित कर देते हैं।

प्रश्न 2 परा उपसर्ग के अर्थ और प्रयोग को बताइये।

उत्तर - परा उपसर्ग का अर्थ निषेध और विरोध है। जैसे - जचते में पर उपसर्ग के प्रयोग से पराजयते रूप बनता है।

प्रश्न 3 -उप उपसर्ग का अर्थ एवं प्रयोग बताइये?

उत्तर - उप उपसर्ग का अर्थ पास, अमुख्य और छोटा है। जैसे - गच्छति में उप उपसर्ग के लगने से उपगच्छति बनता है।

प्रश्न 4 -क्या एक से अधिक उपसर्गों का मिलकर प्रयोग हो सकता है?

उत्तर - हाँ, एक से अधिक उपसर्गों से मिलकर प्रयोग होता है। जैसे - वि+ अव+ हरति-व्यवहरति।

प्रश्न 5- गच्छति में आङ् उपसर्ग के प्रयोग से धातु रूप क्या बनेगा?

उत्तर - आगच्छति।

प्रश्न 6 - गच्छति में सम् उपसर्ग के प्रयोग करने से क्या रूप बनेगा?

उत्तर - संगच्छते।

प्रश्न 7 - प्राचार्यः पद में उपसर्ग बललाइए।

उत्तर - प्राचार्यः पद में प्र उपसर्ग का प्रयोग हुआ।

प्रश्न 8- निपात शब्द की निष्पत्ति कीजिए।

उत्तर - नि+ पत् + घञ।

प्रश्न 9- निपातों का वर्गीकरण कीजिए।

उत्तर - निपातों तीन भागों में वर्गीकृत है-

1. उपमार्थक।
2. कर्मोपसंग्रहार्थक
3. पदपूरण

प्रश्न 10 - न निपात के वैदिक अर्थ बतलाइए।

उत्तर - वैदिक संस्कृत में न निपात के दो अर्थ है - प्रतिषेध और उपमा।

प्रश्न 11- क्या निपात पदों के रूप चल सकते हैं?

उत्तर - नहीं। क्योंकि निपात शब्द अव्यय है।

प्रश्न 12- सामि निपात का अर्थ लिखिए।

उत्तर - सामि निपात का अर्थ है आधा।

प्रश्न 13 - हिरूक् निपात का क्या अर्थ है।

उत्तर - बिना।

प्रश्न 14- विषु निपात का अर्थ बतलाइये।

उत्तर - अनेक।

प्रश्न 15- 'सीता गीता या गायुत ' इस वाक्य में प्रयुक्त निपात बतलाइये।

उत्तर - वा निपात।

(ख) -

1. प्राचार्यः पद में उपसर्ग है-

(क) प्र (ख) आङ्

(ग) उप (घ) नि

उत्तर - (क) प्र।

2. निपात वर्गीकृत है -

(क) तीन भागो में (ख) चार भागों में

(ग) पाँच भागों में (घ) छः भागों में

उत्तर - (क) तीन भागों में।

3. न निपात का वैदिक अर्थ है-

(क) उपमा (ख) निषेध

(ग) प्रतिषेध और उपमा (घ) कोई नहीं

उत्तर - (ग) प्रतिषेध और उपमा।

4. हिरूक् निपात का अर्थ है-

(क) आधा (ख) पूरा

(ग) विना (घ) अनेक

उत्तर - (ग) विना

5. आगच्छति में उपसर्ग है-

(क) परा (ख) सु

(ग) आङ् (घ) सम्

उत्तर - (ग) आङ्।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश - मोतीलाल बनारसीदास बंग्लो रोड जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879 ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान - ग्रन्थ रामबाग, कानपुर।

2.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री।

1. तिवारी डॉ. भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषाविज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डॉ0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवाद कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार, जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी- लाजपतराय माकेट दिल्ली।

5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) 1. संस्कृत का अर्थ बतलाकर प्रयोग कीजिये।

2, उपसर्गों का अर्थ बतलाकर प्रयोग कीजिये।

3. निपातों पर प्रकाश डालिये।

4. निपातों का वर्गीकरण कीजिये।

(ख) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

1. निपात

2. उपसर्ग

3. कर्मोपसंग्रहार्थक

4. पदपूरण

5. ‘न’ निपात

इकाई - 3 आख्यात पदरचना

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा में चार प्रकार के पद हैं-नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। इनमें आख्यात का विशेष महत्व है। आख्यात को भावप्रधान कहा गया है- ‘‘ भावप्रधानम् आख्यातम्‘‘।

प्रस्तुत इकाई में आख्यात का अनुशीलन किया गया है। आख्यात के सम्बन्ध में संस्कृत वैयाकरणों ने विस्तारपूर्वक विचार किया है। वाक्यरचना में आख्यात की प्रायः प्रधानता रहती है।

इस इकाई में आख्यात से सम्बन्धित विविध सामग्री प्रस्तुत की गई है, जिससे आप संस्कृत आख्यात के सम्बन्ध में विधिवत् समझ सकेंगे और इस विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप-

1. संस्कृत आख्यात के विषय में जान पायेंगे।
2. नाम, आख्यात ,उपसर्ग और निपात पद के इन चार भेदों में आख्यात प्रमुख हैं, यह जान सकेंगे।
3. आख्यात भावप्रधान होता है, इसकी जानकारी कर सकेंगे।
4. पदसंरचना में आख्यात की महत्वपूर्ण भूमिका होती, इसकी जानकारी कर सकेंगे।
5. साधन ही क्रिया को बनाते हैं, इसे विधिवत् समझ सकेंगे।
6. संस्कृत भाषा में धातुओं से क्रियायें निर्मित होती है, इसका ज्ञान पा सकेंगे।
7. धातुएँ दस भागों में विभक्त है, इन्हें गण कहते हैं, इसे समझ सकेंगे।
8. धातुएँ परस्मैदी, आत्मनेपदी और उभयपदी के भेद से तीन प्रकार की होती है, इसकी जानकारी कर सकेंगे।
9. णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, नाम धातु आदि का ज्ञान पा सकेंगे।

3.3. आख्यात - अर्थ एवं स्वरूप

आङ् उपसर्ग पूर्वक ख्या धातु से क्त् प्रत्यय के योग से (आ + ख्या+ क्त्) आख्यात शब्द की निष्पति होती है। आख्यात को स्पष्ट करते हुए आचार्य यास्क लिखते हैं कि आख्यात भाव प्रधान होता है- भावप्रधानम् आख्यातम्।

इसका आशय यह है कि जहाँ भाव अर्थात् क्रिया प्रधान है और कारक आदि गौण हैं वह आख्यात कहलाता है। इस प्रकार आख्यात शब्द का संकेतिक अर्थ पठति, गच्छति , खादति आदि क्रिया पद होता है। केवल भू, पा, गम् आदि धातुमात्र या तिप्, तस्, झि आदि तिङ् प्रत्यय आख्यात नहीं कहलायेंगे। वाक्यों में क्रिया की प्रधानता होती है। अतएव आचार्य यास्क स्पष्ट लिखते हैं कि जहाँ नाम और आख्यात दोनों ही पद प्रयुक्त होते है, वहाँ आख्यात की प्रधानता होती है। जैसे- यदि किसी वाक्य में केवल आख्यात में केवल आख्यात का ही प्रयोग होता है तो उसके द्वारा ही वाक्य में पूर्णता आ जाती है जबकि अनेक नामों के प्रयुक्त होने पर वाक्य पूर्ण नहीं होता है। जैसे- गच्छति क्रिया पद के आधान पर कर्ता को अधाह्त करने से निश्चितार्थकी प्रतीति हो जाती है। जबकि केवल कर्ता या अन्य रूप में प्रयक्त किसी भी नाम के द्वारा निश्चितार्थ की प्रतीति नहीं होती । इस प्रकार यहाँ गच्छति आख्यात प्रधान रूप में गमन रूप भाव क्रिया का बोध कराता है और गौण रूप में अन्य पुरूष स्थित एकवचनत्व, कर्ता पद के साथ ,कर्म, करण आदि की ओर भी स्वतः समुद्भूत प्रश्नों के माध्यम से इंगित कर वाक्य गत विचार को पूर्णता प्रदान करता है।

आख्यात पद को और अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं कि पूर्वापर रूप में अवस्थित पहले तथा पीछे के वर्तमानर क्रम में गच्छति आदि पदों में क्रिया के प्रारम्भ से लेकर उसकी समाप्ति पर्यन्त वर्तमान भाव को आख्यात पद के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

3.4 आख्यात पद रचना

3.4.1 आख्यात पदरचना विमर्श

संस्कृत भाषा में चार प्रकार के पदसमूह - नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात बतलाये गये हैं। महर्षि यास्क अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं-

तद् यानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते

चोपरसर्गनिपाताश्च तामीमानि भवन्ति।।

महाभाष्यकार पंतजलि ने इस पद जाति को चार प्रकार से विभाजित किया है-

‘ चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपर्सनिपाताश्च ।’’ (1/1/1)

आख्यात की परिभाषा करते हुये आचार्य यास्क लिखते हैं कि आख्यात भाव प्रधान होता है- भावप्रधानम् आख्यातम्। (निरूक्त) इसका आशय यह है कि जहाँ भाव अर्थात् क्रिया प्रधान है और कारक आदि गौण हैं, वह आख्यात कहलाता है। इस प्रकार आख्यात शब्द का संकेतिक अर्थ

तिङन्त क्रिया पद पठति, पचति, आदि होता है। केवल तस्, झि, तिङ् प्रत्यय या भू, पा, गम् आदि धातु मात्र नहीं। तिङन्त अर्थात् क्रिया ही वाक्य में प्रधान होती है। आचार्य यास्क यह स्पष्ट करते हैं कि जहाँ नाम और आख्यात दोनों ही पद होते हैं, वहाँ भाव प्रधान होते हैं अर्थात् क्रिया की प्रधानता होती है। यदि किसी वाक्य में आख्यात् पद एकाकी होता है तो उसके द्वारा की वाक्य में पूर्णता आती है तथा अनेक नामों के प्रयुक्त होने पर भी वाक्य पूर्ण नहीं होता। क्रिया पद 'पठति' के आधान 'छात्रः' अध्याहृत होकर निश्चितार्थ की प्रतीति हो जाती है, - जबकि केवल कर्ता या अन्य कारण के रूप में प्रयुक्त किसी भी 'नाम' द्वारा निश्चिार्थ की प्रतीति संभव नहीं है। इस प्राकर 'पठति' आख्यात प्रधान रूप में 'पठन' रूप भाव-क्रिया का बोध कराता है और गौण रूप में अन्य पुरूषस्थ एकवचनत्व (कर्ता पद) के साथ कर्म, करण आदि की ओर भी स्वतः समुद्भूत प्रश्नों के माध्यम से इंगित कर वाक्यगत विचार को पूर्णता प्रदान करता है।

आख्यात अर्थात् तिङ्न्त पद का प्रयोग, कर्ता, भाव, कर्म इन रूपों में होता हे और सब जगह इसकी की प्रधानता रहती है। इस आख्यात के भीतर पुरूष, वचन एवं काल प्रतिबिम्बित होते हैं। जबकि यह लिंग की विशिष्टता अर्थात् पुँल्लिंग, स्त्रीलिंग, और नंपुसक लिंग से सर्वथा दूर होता है। जैसा कि इस सम्बन्ध में कहा गया है-

क्रियावाचकमाख्यातं लिङ्गतो न विशिष्यते।

त्रीनत्र पुरूषान् पिद्यात् कालतस्तु विशिष्यते।।

आख्यात पद को और अधिक स्पष्ट करते हुये आचार्य यास्क कहते हैं कि पूर्वापर रूप में अवस्थित अर्थात् पहले तथा पीछे के वर्तमान क्रम में व्रजति आदि पदों में क्रिया के प्रारम्भ से लेकर उसकी समाप्ति पर्यन्त वर्तमान भाव को आख्यात पद के द्वारा व्यक्त किया जाता है।

क्रिया साध्य होती है, उसे सिद्ध करने के लिए साधन रूपी अन्य पद नाम, कारक आदि का प्रयोग किया जाता है क्योंकि साधन ही क्रिया को बनाते हैं। जैसा कि महाभाष्य में कहा गया है-

साधनं हि क्रियां निवर्तयति।(महाभाष्य- 6/1/35)

इस प्रकार साध्यावस्था पर्यन्त वर्तमान भाव प्रधानता को प्राप्त रहता है और सिद्धावस्था को प्राप्त हो जाने पर वही भाव मूर्त रूप धारण कर कृदन्त प्रत्ययों के द्वारा अभिहित होता हुआ सत्ववत् (द्रव्यवत्) हो जाता है।

जब तक भाव (क्रिया) साध्यावस्था में रहता है तब क्रिया के प्रारम्भ होने से लेकर उसके सम्पन्न होने तक जो उसकी असम्पूर्ण स्थिति है उसे आख्यात द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। जैसे-व्रजति कहने पर

गमन विचारणा से प्रेरित होकर यात्रा की तैयारी, पाथेय का प्रबन्ध करना, विस्तर आदि बाँधना, वस्त्र पहनकर तैयार होना, वाहन का प्रबन्ध आदि, आदि विविध अवान्तर क्रियाकलापों का जो कि गन्तव्यस्थान के पहुँचने तक हो रहे हैं-बोध होता है। तथा 'पचति' कहने पर भोजन बनाने की विचारणा से प्रेरित होकर रसोईघर में प्रवेश, अग्नि प्रज्वलन, दाल-चावल-आटा-शाक-मसालों आदि के परिष्करण के साथ समस्त क्रमागत अवान्तर क्रियाओं से युक्त भोज्य - वस्तु के संराधन का बोध होता है। इस प्रकार 'व्रजति' और 'पचति' क्रिया के अन्तर्गत यद्यपि पूर्वापर अनेक क्रियाएँ हैं किन्तु वे सभी 'व्रजति' और 'पचति' की अंग-भूत हैं, अतः उन सभी का बोध अंगीभूत प्रधान क्रिया व्रजति या पचति आख्यात के प्रयोग से होता है।

इस सम्बन्ध में बृहद्देवताकार ने इस सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है-

क्रियासु बह्यवीष्वभिसंश्रितो यः पूर्वाऽपरीभूतइवैक एं।

क्रियाभिनिर्वृत्तिवशेन सिद्धः आख्यातशब्देन तमर्थमाहुः।।

अर्थात् जो अनेक क्रियाओं पर आश्रित रहता है जिसमें क्रमागत पूर्व-पश्चात् जैसे विभाग प्रतीत होते हैं परन्तु वास्तव में वे होते एक ही हैं तथा जो अनेक क्रियाओं की सिद्धि के साथ सिद्ध होता है उसे बुधजन आख्यात पद के द्वार व्यक्त करते हैं।

संस्कृत में धातुओं से क्रिया का निर्माण होता है, क्रियावाचक प्रकृति को धातु कहते हैं। भू, पा, गम्, अद्, वित् , दिव्, सुन, रूध्, तन्, क्री, और चुर आदि आज्ञा एवं विधि लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ और लृङ्।

ये दश लकार है। इनमें से लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक संस्कृत में होता है।

लट्लकार-वर्तमान काल के अर्थ में लट्लकार का प्रयो होता है। वर्तमाने लट्

जैसे - पठति।

लिट्लकार- अनद्यतन भूत परोक्ष क्रिया के अर्थ में धातु से लिट्लकार होती है।

जैसे- बभूव।

लुट्लकार- अनद्यतन भविष्यत् क्रिया को बतलाने के लिये क्रिया में लुट्लकार होता है।

जैसे- भविता।

लृट्लकार- भविष्यत्काल की क्रिया को बताने के लिए धातु से लृट्लकार होता है।

जैसे - भविष्यति।

लोट्लकार - विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट , सम्प्रशन, और प्रार्थना इन अर्थों में धातु से लोट् लकार होता है।

जैसे - गच्छतु।

लङ्लकार - अनद्यतन भूतकाल के अर्थ में धातु से लङ्लकार होता है।

जैसे - अपठत्।

विधिलिङ्लकार - विधि निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ठ, सम्प्रश्न और प्रार्थना आदि अर्थों में धातु से लिङ्लकार होता है।

जैसे - पठेत्।

आशीर्लिङ् - आशीर्वाद के अर्थ में धातु से लिङ्लकार होता है।

जैस - भूयात्।

लुङ्कार - भूतकाल में धातु से लुङ्लकार होता है।

जैसे - अभूत्।

लृङ्लकार - लिङ् के निमित्तहोने पर यदि क्रिया की असिद्धि गम्यभान हो तो धातु से लृङ्लकार होता है।

जैसे - अभविष्यत्।

गण- धातुएँ दश भागों में बाँटी गई है। इनको गण कहते हैं। यहाँ गण का अर्थ समूह है। धातुओं के उस समूह को भ्वादिगण कहते हैं जिसके आदि में भू धातु आती है। इसी प्रकार से दूसरे गणों को समझना चाहिए। ये गण 10 हैं।

1. भवादि
2. अदादि

3. जुहोत्यादि

4. दिवादि

5. स्वादि

6. तुदादि

7. रूधादि

8. तनादि

9- क्रयादि

10- चुरादि।

इन गणों ने आने वाले धातुयें परम्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी होती है।

उदाहरण के लिए भू धातु परम्मैपदी है। एध् धातु आत्मनेपदी है और रूघ् धातु उभयपदी है। संस्कृत में लकारों के स्थान पर जो तिप्, तस्, झि आदि आदेश होते हैं उन्हें परस्मैपद कहते हैं और तङ् प्रत्याहार अर्थात् त से लेकर महिङ् तक सभी प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा होती है-

(लः परम्मैपदम् 1/4/ 99)

(तङानावात्मनेपदम् 1/4/100)

आत्मनेपद के चार निमित्त हैं-

1. अनुदात्त

2. ङित्

3. स्वरितेत् तथा

4. ञित् - इन चार आत्मनेपद के निमित्तोंका विचार करने के बाद 'तिङ्' लेना चाहिए। यदि आत्मनेपद के निमित्तों में से कोई आत्मनेपद न हो तो परम्मैपद का प्रयोग करना चाहिए। 'भू- धातु से परम्मैपद ही आयेगा क्योंकि यहाँ आत्मनेपद का कोई निमित्त नहीं है।

इन तिङ् के दोनों पदों आत्मनेपदों और परम्पैपदों के तीन त्रिक अर्थात् तीन के समूह हैं। उनकी क्रम

से पहले की प्रथम, दूसरे की मध्यम और तीसरे की उत्तम संज्ञा होती है, **तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमाः। (अष्टाध्यायी - 1/4/ 101)**

इस प्रकार तिङ्प्रत्याहार में परस्मैपद और आत्मनेपद के भेद से नौ-नौ प्रत्यय हैं और उन नौ प्रत्ययों के भी तीन वर्ग बने हुए हैं। उन तिङ् के त्रिकों अर्थात् प्रथम, मध्यम और उत्तम संज्ञाओं के तीनों वर्गों के प्रत्ययों की क्रमशः एकवचन, द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होती है। इसे पुरूष वचन सूचक चक्र से समझें-

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरूष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरूष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	त	आताम्	झ
मध्यम पुरूष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरूष	इट्	वहि	महिङ्

इस प्रकार एक धातु क्रिया की एक अवस्था (काल) आदि को प्रकट करने को तीन पुरूष एवं तीन वचन = 9 रूप बनते हैं। उदाहरण के लिए वर्तमानकाल में लट् लकार से युक्त एक परस्मैपद और एक आत्मनेपद धातु को उद्धृत कर रहे हैं।

परस्मैपदी पठ् (पढना) धातु (वर्तमानकाल) लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	पठति	पठतः	पठन्ति

मध्यम पुरूष	पठसि	पठथः	पठथ
उत्तम पुरूष	पठामि	पठावः	पठामः

आत्मनेपदी शुभ् (शोभ्)= शाभित होना वर्तमान काल लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	शोभते	शोभेते	शोभन्ते
मध्यम पुरूष	शोभसे	शोभेथे	शोभध्वे
उत्तम पुरूष	शोभे	शोभावहे	शोभामहे

1. कर्तृवाच्य
2. कर्मवाच्य
3. भाववाच्य

संस्कृत में लगभग दो हजार धातुएँ हैं। जिनसे अनेक रूपों की रचना होती है। धातुओं से पूर्व उपसर्गों का भी प्रयोग होता है। जिससे उन धातुओं का अर्थ ही बदल जाता है। उपसर्गों के सम्बन्ध में महर्षि पाणिनि इस प्रकार लिखते हैं-

उपसर्गाः क्रियायोगे। (अष्टाध्यायी - 1/4/59)

उपसर्ग उनका अर्थ और प्रयोग का अवलोकन करें-

उपसर्ग	अर्थ	उदाहरण
प्र	अधिक, प्रकृष्ट	प्रहरति, प्रलपति
परा	निषेध, विरोध	पराजयते
अप	हीनता, न्यूनता	अपाकरोति, अपहरति
सम्	अच्छा	संवदति
अनु	पीछे	अनुसरति

अव	समझना,	नीचे अवगच्छति
निस्-निस्	निषेध	निर्गच्छति
दुस्-दुर्	कठिन	दुश्शास्ति, दुराचरति
वि	विभिन्न	विजयते
आङ् (आ)	सीमा, ग्रहण,	विरोध आदि आगच्छति
नि	निषेध, नीचे	निषेधति
अधि	प्रधानता,	समीपता अधिगच्छति
अति	अतिशय तथा	उत्कर्ष अतिशेते
सु	अच्छा	सुशोभते
उत्	ऊपर, ऊँचा	उपतिष्ठति
अभि	पास, सामने,	अभिगच्छति
प्रति	प्रत्येक , बराबरी,	प्रतिभाषते
परि	आस-पास	परिचरति
उप	पास, अमुख्य,	उपगच्छति

कहीं-कहीं एक से अधिक भी उपसर्गों का प्रयोग होता है। जैसे - वि+ अव + हरति = व्यवहरति

अभि+ नि+ विशते = अभिनिविशते।

3.4.2 णिजन्त (प्रेरणार्थक क्रियाएँ)

नियम-

1. एक कर्ता तो किसी कार्य को स्वयं करने वाला होता है और दूसरा कर्ता कार्य को स्वयं न करके किसी दूसरे के द्वारा कराने वाला होता है। जो कार्य करने वाले को प्रेरित करता है, उसे प्रयोजक कर्ता

कहते हैं तथा जिसको प्रेरणा दी जाती है उसे प्रयोज्य कहते हैं। जैसे- रमेशः ग्रामं गच्छति = रमेश गाँव जाता है- यहाँ 'रमेश' स्वयं गमन क्रिया करने वाल है, अतः वह साधारण दशा का कर्ता है। सुरेशः रमेशं ग्रामं गमयति = सुरेश रमेश को ग्राम भेजता है। यहाँ 'रमेश' ग्राम को जाता है। 'सुरेश' उसे जाने के लिए प्रेरित करता है, अतः सुरेश प्रयोजक (प्रेरित करने वाल) कर्ता है तथा रमेश को प्रेरणा दी जा रही है, अतः वह प्रयोज्य कर्ता है।

2. प्रयोजक (प्रेरित करने वाला) कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। प्रयोज्य (जिसे प्रेरणा दी जाती है) कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। कर्म में द्वितीया विभक्ति तथा क्रिया कर्ता के अनुसार प्रयुक्त होती है। जैसे- पुष्पा भृत्येन ओदनं पाचयति = पुष्पा नौकर से चावल पकवाती है। यहाँ 'पुष्पा' प्रयोजक कर्ता के रूप में है, अतः उसमें प्रथमा तथा 'भृत्य' प्रयोज्य कर्ता के रूप में है, अतः उसमें तृतीया विभक्तिी होती है।

जैसे-

1.	गुरूः रमेशं पाठयति	=	गुरू रमेश को पढाता है।
2.	पुष्पा तं ग्रामं गमयति	=	पुष्पा उसे गाँव भेजती है।
3.	सा रमया ओनदनं पाचयति	=	वह रमा से चावल पकवाती है।
4.	आचार्यस्तं रामेण पाठयिष्यति	=	आचार्य उसे राम से पढवायेगा।
5.	सुरेशस्तं वृक्षमारोहयति	=	सुरेश उसे वृक्ष पर चढाता है।

3.4.3 सन्नत (इच्छार्थक)

नियम

1. पठितुम् इच्छति = पढने की इच्छा करता है' इस आशय को प्रकट करने के लिए दो धातुओं (पठ् इच्छ्) के स्थान पर सन्नत पठ् ही क्रियापद का प्रयोग होता है। जैसे -रमेशः पठितुम् इच्छति ' (रमेश पढना चाहता है) के स्थान पर, रमेशः पिपठिषति' भी उसी अर्थ को प्रकट करता है।

2. यदि इच्छा तथा धातु के कर्म का कर्ता एक ही हो तो इच्छा के अर्थ में धातु के बाद 'सन्' प्रत्यय होता है। धातु से सन् प्रत्यय लगने पर द्वित्व, कहीं-कहीं पर इत्व, इट् का आगम तथा षत्व कार्य होते हैं। जैसे - पठ् + सन् = पिपठिष + ति = पिपठिषति।

3. प्रायः परस्मैपदी धातुएँ सन् लगने पर परस्मैपदी होती हैं तथा आत्मनेपदी धातुएँ सन् लगने पर आत्मनेपदी रहती है।

1. छात्राः पिपठिषन्ति = छात्र पढने की इच्छा करते हैं।

2. ताः बालिकाः लिलेखिषन्ति = वे बालिकायें लिखने की इच्छा करती है।

3. तौ धनं लिप्सेते - वे दोनों धन पाने की इच्छा करते हैं।

3.4.4 यङन्त पौनः पुन्य तथा अतिशयार्थ

नियम-

1. क्रिया के पुनः पुनः अथवा अधिक होने के अर्थ में धातु से 'यङ्' प्रत्यय लगता है।

2. 'यङ् प्रत्यय में 'य' शेष रहता है, धातु को द्वित्व हो जाता है, द्वित्व में कुछ परिवर्तन भी होते हैं तथा यङ्न्त धातुओं के रूप आत्मनेपद में चलते हैं। जैसे- दा (धातु)+ य (यङ्) = देदीय + त = देदीयते।

1. पुष्पा पुष्पं जेघ्रीयते = पुष्पा फूल को पुनः पुनः सूँघती हैं

2. धनिकाः धनं देदीयन्ते = धनी लोग धन बार - बार दे रहे हैं।

3. कृषकाः क्षेत्रं चरीकृष्यन्ते = किसान खेत को पुनः पुनः जोत रहे हैं।

3.4.5 नामधातु-

नियम-

1. नाम अर्थात् प्रातिपदिक या सुबन्त पद के कुछ प्रत्यय लगाकर जो धातु बनायी जाती है, उसे ''नामधातु'' कहते हैं। जैसे सुबन्त 'पुत्र' शब्द से पुत्रीयति।

2. नामधातु में विभिन्न अर्थों में विभिन्न प्रत्यय लगते हैं। जैसे-

पुत्रीयति - आत्मनः पुत्रमिच्छति - पुत्र + क्यच् = पुत्र की इच्छा करता है।

विष्णूयति द्विजम् - विष्णुमिवाचरित - विष्णु + क्यच् = ब्राह्मण से विष्णु के समान व्यवहार (आचरण) करता है।

कृष्णति - कष्ण इवाचरति - कृष्ण + क्विप् = कृष्ण के समान आचरण करता है।

लोहितायते - ति - लोहित + क्यष् = लाल हो जाता है।

शब्दायते - शब्दं करोति - शब्द - क्यङ् = शब्द करता है।

विशेष - क्यङ्प्रत्ययान्त शब्दों के रूप आत्मनेपद में चलते हैं।

1. पुष्पा छात्रं पुत्रयति = पुष्पा छात्र के साथ पुत्र के समान आचरण करती है।

2. सः कृष्णति = वह कृष्ण के समान आचरण करता है।

3. सुरेशः कलहायते = सुरेश कलह करता है।

3.4.6 (क) कृत्यप्रत्यय

नियम-

1. कृत् प्रत्यय जिसके अन्त में होता है , वह 'कृदन्त' कहलाता है। से कृत् प्रत्यय धातुओं से ही होने वाले 18 तिङ् प्रत्ययों से भिन्न होते हैं। इन कृत् प्रत्ययों से संज्ञा, विशेषण, अव्यय तथा क्रियापद बनते हैं।

2. तव्यत्, तव्य, अनीयर, यत् ण्यत् और क्यप् प्रत्यय कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग कर्तृवाच्य में नहीं होता है।

3. कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है तथा कर्म के ही लिग् तथा वचन के अनुसार क्रिया का भी लिङ्ग एवं वचन होता है। जैसे- त्वया धर्मः चेतव्यः, मया कर्म कर्तव्यम् तथा रूप्यके नेतव्ये इत्यादि।

4. भाववाच्य की क्रिया में नपुंसकलिंग तथा एकवचन का ही प्रयोग होता है।

जैसे - त्वया एधितव्यम्, ताभिरेधितव्यम् इत्यादि।

उदाहरण-

1. तेन ग्रामः गन्तव्यः - उसे गाँव को जाना चाहिए।
2. त्वया तत्कर्म कर्तव्यम् - तुम्हें वह काम करना चाहिए।
3. त्वया एधनीयम् - तुम्हें बढना चाहिए।

(ख) कृत् प्रत्यय-

नियम-

1. क्त (त) और क्तवतु (तवत्) प्रत्यय भूतकालीन है। अतएव इनका प्रयोग भूतकाल में होता है।

2. 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में होता है तथा 'क्तवतु' प्रत्यय का प्रयोग कर्तृवाच्य में होता है। जैसे - मया पाठः पठितः - मैंने पाठ पढा (क्त प्रत्यय) तथा सः पाठं पठितवान् = उसने पाठ पढा (क्तवतु प्रत्यय)

3. 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग सकर्मक धातुओं से कर्म में होता है । कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया तथा कर्म में प्रथता विभक्ति होती है। 'क्त' प्रत्ययान्त क्रियापद में कर्म के अनुसार लिङ्ग तथा वचन का प्रयोग होता है। जैसे - तेन पाठः पठितः, मया पुस्तके पठिते, मया पुस्तकाति पठितानि।

4. अकर्मक धातुओं से 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग कर्ता तथा भाव दोनो मे ही होता है। जब 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग कर्ता में होता है। तब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द कर्ता के अनुसार प्रथमा विभक्ति में होता है। जैसे - रामः गतः । जब 'क्त' प्रत्यय का प्रयोग भाव में होता है, तब कर्ता में तृतीय विभक्ति तथा प्रत्ययान्त शब्द नपुंसक लिङ्ग में प्रथमा के एकवचन में प्रयुक्त होता है जैसे - देवेन हसितम्।

5. 'क्तवतु' प्रत्यय का प्रयोग सकर्मक और अकर्मक से कर्ता में होता है। इसके कर्ता में प्रथाम विभक्ति का प्रयोग होता है। कर्म में द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है। क्रिया में लिग् तथा वचन कर्ता के समान प्रयुक्त होते हैं। जैसे - रमेशः जलं पीतवन् = रमेश ने जल पिया। तौ वनं गतवन्तौ = वे दोनों वन गये।

6. गत्यर्थक, अकर्मक , श्लिष् शीङ्, स्था, आस्, वस् जन्, रूह , जॄ - इन धातुओं से 'क्त' प्रत्यय कर्ता में होता है। जैसे स गतः वृक्षामारूढ़ कपिः।

7. कभी-कभी क्त क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे - वनं गतः रामः तथाकरोत् - यहाँ वनं गतः यह रामः का विशेषण है। विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर 'क्त' तथा क्तवतु' प्रत्ययान्त शब्दों के लिङ्ग वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं।

1. तेन पाठः पठितः = उसने पाठ पढा।

2. बालकेन फलं भक्षितम् = बालक ने फल खाया।

3. रामेण सीता त्यक्ता = राम ने सीता को छोडा़।

3.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं'

1. संस्कृत भाषा में आख्यात का महत्वपूर्ण स्थान है। आख्यात के सम्बन्ध में संस्कृत वैयाकरणों ने विधिवत् प्रकाश डाला है।
2. पद रचना के लिए आख्यात आवश्यक है।
3. आख्यात की परिभाषा करते हुए आचार्य यास्क बतलाते हैं कि जहाँ भाव अर्थात् क्रिया प्रधान हो, वह आख्यात कहलाता है।
4. पूर्वापर रूप में अवस्थित पहले और पीछे के वर्तमान क्रम में पठति आदि पदो में क्रिया के प्रारम्भ से लेकर सामप्ति पर्यन्त वर्तमान भाव को आख्यात कहते हैं।
5. जब तक क्रिया साध्यावस्था में रहती है तब तक क्रिया के प्रारम्भ होने से उसके सम्पन्न होने तक जो उसकी असम्पन्न स्थिति है, उसे आख्यात के द्वारा व्यक्त करते हैं।
6. संस्कृत भाषा में धातुओं से क्रियाएँ निर्मित होती है।
7. धातुएँ 10 भागों में विभक्त हैं, इन्हें गण कहते हैं।
8. धातुएँ परमैयपदी , आत्मन्ने पदी, और उभयपदी होती है।
9. धातुओं से अनेक रूपों की रचना होती है।
10. संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं। - कर्तृवाच्य कर्मवाच्य, भाववाच्य।

3.6 शब्दावली

आख्यात-आख्यात पद की निष्पत्ति आङ् (आ) उपसर्गपूर्वक ख्या धातु से क्त प्रत्यय के योग से होती है। यहाँ आख्यात पद का अर्थ क्रिया है। जैस कि निरूक्त में कहा गया है।भावप्रधानम् आख्यातम्।आख्यात शब्द की व्युत्पत्ति आप्टे द्वारा रचित संस्कृत हिन्दी कोष में इस प्रकार की गयी है- धात्वर्थेन विशिष्टस्य विधेयत्वेन बोधन समर्थस्वार्थयत्नस्य शब्दो वाख्यात उच्चते ।
(संस्कृत हिन्दी कोष - वामन शिवराम आप्टे पृ0 139)

तिङन्त- यह प्रत्याहार है । इसके अन्तर्गत 18 प्रत्यय आते हैं। ये 18 प्रत्यय निम्नलिखित हैं।-

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरूष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरूष	मिप्	वस्	भस्

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	त	आताम्	झ
मध्यम पुरूष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरूष	इट्	वहि	महिङ्

लकार- लट्, लिट्, लुट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लिङ्, लुङ् और लुङ् से दश लकार हैं। इनमें से लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक संस्कृत में होता है। ये विभिन्न कालों के वाचक हैं। इनमें से कुछ लकार आज्ञा, निमन्त्रण आदि अर्थ विशेष को भी बतलाते हैं।

धातु- धा धातु से तुल् प्रत्यय के योग से धातु शब्द निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ हैं संघटम या मूल भाग। संस्कृत भाषा में धातुओं से क्रियाओं का निर्माण होता है। क्रियावाचक प्रकृति को धातु कहते हैं। जैसे- भू, एध, आदि।

लट्- वर्तमान के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है। (वर्तमान लट्)

लिट्- परोक्ष भूत अनद्यतन क्रिया के अर्थ में लिट् लकार का प्रयोग होता है। (परोक्षे लिट्)

लुट् - अनद्यतन भविष्यत् क्रिया के अर्थ में लुट् लकार का प्रयोग होता है। (अनद्यतने लुट्)

लृट् - भविष्यत् काल में होने वाल क्रियाओं का ज्ञान कराने के लिए लृट् लकार का प्रयोग होता है। (लृट शेषे च)

लोट्- आज्ञा, निमन्त्रण, आमन्त्रण , अधीष्ट सम्प्रश्न और प्रार्थना इन अर्थाें में धातुओं से लोट् लकार होता है। (लोट् च)

लङ् - यह लकार अनद्यतन भूतकाल को द्योतित करता है। (अनद्यतने लङ्)

विधिलिङ् विधि, निमन्त्रण आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रशन और प्रार्थना इन अर्थों से धातु में लिङ् लकार होता है। (विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रार्थनेषु लिङ्)

आशीर्लिङ् यह लकार आशीर्वाद अर्थ को द्योतित करती है। (आशिषि लिङ्लोटौ)

लुङ्- यह लकार भूतकाल में होने वाले सभी प्रकार की क्रियाओं का बोध करता है। आसन्नभूतकालिक कार्यों के लिए इसका अधिक प्रयोग होता है। (लुङ्)

लृङ्- लिृङ् के निमित्त होने पर क्रिया की असिद्धि गम्ययमान हो तो भविष्यत् काल में धातु से लृङ् लकार होता है। (लिङ्निमित्तो लृङ् क्रियातिपत्तौ)

गण- गण धातु से अच् प्रत्यय के योग से गण शब्द निष्पन्न होताहै जिसका अर्थ समूह हैै। संस्कृत की धातुएं दश भागों में बाँटी गई हैं, इनको गण कहते हैं। यहाँ गण का अर्थ समूह है। धातुओं के उस समूह को भ्वादिगण कहते हैं जिसके आदि में भू धातु हो। इसी प्रकार से दूसरे गणों को समझना चाहिए। ये गण 10 है ।

1. भवादि
2. अदादि

3. जुहोत्यादि
4. दिवादि
5. स्वादि
6. तुदादि
7. रूधादि
8. तनादि
9- क्रयादि
11. चुरादि।

परस्मैपद

परस्मै = परार्थ पदम् = परस्मैपदम् दूसरे के लिए प्रयुक्त वाच्य। इसमें संस्कृत की धातुओं के रूप चलते हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कहा गया है कि आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु से कर्ता (कर्तृवाच्य) में परस्मैपद होता है। (शेषात्कर्तरि परस्मैपदम)

आत्मनेपद-

आत्मने = आत्मार्थफलबोधनाय पदम् अर्थात् आत्मवाची क्रिया पद।

तङ् प्रत्याहार तथा शानच् और कानच् की आत्मनेपदसंज्ञा होती है-

1. अनुदात्तेत्
2. ङ्ति
3. स्वरितेत् तथा
4. ञित्, ये चार आत्मनेपद के निमित्त हैं। इन निमित्तों के होने पर आत्मनेपद होता है।

उपसर्ग- उप उपसर्गपूर्वक सृज् धातु से धञ प्रत्यय के योग से उपसर्ग शब्द की निष्पत्ति होती है। ये धातु के पूर्व लगते हैं। इनके सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है- उपसग।- निपाताश्चादयोज्ञेयाः प्रादयस्तूपसर्गकाः द्योतकत्वात् क्रियाकत्वात् क्रियायोगे लोकादवगता इमे।

प्र परा आदि 20 उपसग हैं। इन उपसर्गों की विशेषता के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त हैं। एक सिद्धान्त के अनुसार तो धातुओं से अनेक अर्थ होते है। जब उपसर्ग उन धातुओं के केवल धातुओं में पहले से विद्यमान परन्तु गुप्त पड़े हुए अर्थ को प्रकाशित कर देते हैं। वे स्वयं अर्थ को प्रकाशित कर देते हैं। वे स्वयं अर्थ की अभिव्यक्ति नहीं करते क्योंकि वे स्वयं अर्थहीन ही हैं। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार उपसर्ग अपना स्वतन्त्र अर्थ प्रकट करते हैं। वे धातुओं के अर्थों में सुधार करते हैं, बढ़ाते हैं और उनके अर्थों को बदल देते हैं। अतएव कहा गया है कि धात्वर्थ बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते, तमेव विशिनष्टि अन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा।।

णिजन्त- जब धातुओं में णिच् प्रत्यय का प्रयोग होता है तो उन्हें णिजन्त कहते हैं। एक कर्ता किसी कार्य को स्वयं करने वाला होता है। दूसरा कर्ता किसी दूसरे के द्वारा कार्य करानेवाला होता है। जो

कार्य करने वाले को प्रेरित करता है उसे प्रयोजक कर्ता कहते हैं। जिसको प्रेरणा दी जाती है , उसे प्रयोज्य कहते हैं। प्रयोजक कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है और प्रयोज्य कर्ता में तृतीय विभक्ति होती है। णिच् प्रत्यय के प्रयोग करने से धातु रूप बदल जाता है। जैसे - गच्छति- गमयति।

यङ्न्त- क्रिया पुनः-पुनः अथवा अधिक होने के अर्थ में यङ् प्रत्यय लगता है। ऐसी धातुओं को यङन्त कहते हैं। जैसे - दा धातु से यङ् प्रत्यय के लगने पर देदीयते रूप बनता है।

नामधातु- नाम अर्थात् प्रातिपदिक या सुबन्त से प्रत्यय लगाकर जो धातु बनायी जाता है , उसे नामधातु कहते हैं।

जैसे- सुबन्त कृष्ण शब्द से क्वित् प्रत्यय के लगने से कृष्णति रूप बनता है।

कृदन्त- धातुओं से 18 तिङ् प्रत्ययों से भिन्न जो प्रत्यय होते हैं, उन्हे कृत् प्रत्यय कहते हैं और कृत् प्रत्यय जिनक अन्त में होते हैं उन्हें कृदन्त कहते हैं।

जैसे - चि + तव्य = चेतव्य।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उतर

(ख) 1. तिङ्न्त में कितने प्रत्यय हैं?

क- 12 ख- 18

ग- 20 ध- 24

उ0 - ,ख- 18

2- परस्मैपदी प्रत्यय हैं-

क- 9 ख- 10

ग- 12 ध- 15

उ0 - क- 9

3- लकारें हैं-

क- 8 ख- 10

ग- 12 ध- 18

उ0 - ,ख- 10

4- वर्तमान काल के अर्थ में लकार का प्रयोग होता है-

क- लट् ख- लिट्

ग- लुट् ध- लृट्

उ0 - क- लट्

5- गण हैं-

क- 8 ख- 10

ग- 15 ध- 18

उ0 - ,ख- 10

6- गभयति में प्रत्यय लगता है-

क- णिच् ख- सन्

ग- घञ ध- तव्य

उ0 - क- णिच्।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।
4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।
5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।
6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।
7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली ।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(क)

1. आख्यात के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. 10 लकारों का नाम लिखकर उनका विश्लेषण कीजिए।
3. आत्मनेपद के निमित्तों का उल्लेख कीजिए।
4. संस्कृत के वाच्यों पर प्रकाश डालिए।
5. नामधातु के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

(ख) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1. लिट् लकार
2. लृट् लकार
3. परस्मैपद
4. आत्मनेपद
5. यङ्न्त
6. कृदन्त

इकाई 1 .संस्कृत ध्वनियों का विकासक्रम

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय अपनी अनेक मौलिक विशेषताओं के कारण विशेष महत्व रखता है। संस्कृत भाषा में ध्वनियों का विशेष महत्व है। ध्वनियों का अध्ययन भाषा विज्ञान के अन्तर्गत आता है।

प्रस्तुत इकाई में संस्कृत ध्वनियों के विकास क्रम का अनुशीलन किया गया है। संस्कृत ध्वनियों के सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही विश्लेषण होता चला आ रहा है। इस सम्बन्ध में महर्षि यास्क, पाणिनि, कात्यायन, पंतजलि आदि आचार्यों ने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं।

इस इकाई में संस्कृतध्वनियों के विकासक्रम से सम्बन्धित विषय को प्रस्तुत किया गया है, जिससे आप संस्कृतध्वनियों के विकासक्रम को विधिवत् समझ सकेंगे और इस विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन केअनन्तर आप-

- संस्कृतध्वनियों के विकासक्रम को जान पायेंगे ।
- वैदिक संस्कृतध्वनियों को समझ पायेंगे।
- वैदिक भाषा की मूल बावन ध्वनियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- लौकिक संस्कृत की ध्वनियों के विषय में जानकारी पा सकेंगे।
- सुप्रसिद्ध 14 माहेश्वर सूत्रों की जानकारी पा सकेंगे।
- ध्वनियों के भेदों प्रभेदों को जान सकेंगे।
- स्थान और प्रयत्न के अनुसार ध्वनियों को समझ सकेंगे।
- किसी ध्वनि का उच्चारण किस स्थान से होता है? इसकी जानकारी पा सकेंगे।
- प्रयत्न के अनुसार उच्चरित ध्वनि की जानकारी कर सकेंगे।
- आभ्यन्तर प्रयत्नों को समझ सकेंगे।
- विचार, संवार, श्वास आदि बाह्य प्रयत्नों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 संस्कृत ध्वनियों का विकास क्रम- अर्थ एवं स्वरूप

संस्कृतध्वनियों का मूल रूप वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से लेकर नवें मण्डल तक का भाग भाषा की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन माना गया है। वैदिक वाङमय के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा का क्रमिक विकास होता गया। इसी प्रकार वैदिक ध्वनियों के भी विषय में कहा जा सकता है। वैदिक भाषा की मूल ध्वनियाँ 52 हैं जो कि इस प्रकार हैं-

1- मूलस्वर - ह्रस्व - अ, इ, उ, ऋ, लृदीर्घ - आ, ई, ऊ, ॠ

2- संयुक्त स्वर - ए (अ उदात्त इ) ओ (अ उदात्त उ) औ (आ उदात्त उ)

3- स्पर्श व्यञ्जन - कण्ठ्य - क् ख् ग् घ् ङ्।

तालव्य - च् छ् ज् झ् ञ्।

मूर्धन्य - ट् ठ् ड् ढ् लह् ण्।

दन्त्य - त् थ् द् ध् न।

ओष्ठ्य - प् फ् ब् भ् म्।

4- अन्तः स्थ - य् र् ल् व्।

5- ऊष्म - श् (तालव्य) ष् (मूर्धन्य) स् (दन्तय)।

6- महाप्राण - ह्

7- शुद्ध अनुनासिक - अनुस्वार

8- अघोष संघर्षी -: विसर्ग (विसर्जनीय)

- जिह्वामूलीय

- उपध्मानीय

यद्यपि इन ध्वनियों में से कुछ ध्वनियों के विषय में विद्वान् एक मत नहीं है। परन्तु यही वैदिक ध्वनियाँ विकसित होती हुयीं लौकिक संस्कृत ध्वनियों का स्वरूप ग्रहण करती है।

1.4 संस्कृत ध्वनियों का विकासक्रम

1.4.1 वैदिक संस्कृत

संस्कृत की ध्वनियों के अध्ययन के लिए हमें वैदिक संस्कृत का अनुशीलन करना होगा।वैदिक संस्कृत -इस काल की भाषा को छन्दस् या प्राचीन संस्कृत भी कहते हैं। छन्दस् भाषा में हिन्दू धर्म के मूलाधार वेदों की रचना की गई । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् साहित्य का प्रणयन वैदिक संस्कृत में ही हुआ है। वैदिक साहित्य का निमार्ण एक काल में न होकर अधिक समय में हुआ है। ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल से लेकर नवें मण्डल तक का भाग भाषा की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भाषा का क्रमिक विकास होता गया है। जब आर्यों की निवास भूमि सप्तसिन्धु पंजाब के आस-पास का क्षेत्र था, उस काल की साहित्यिक रचनाओं के वैदिक संस्कृत का प्राचीन रूप मिलता है। मध्यप्रदेश में हुई रचनाओं में वैदिक भाषा का निखरा हुआ रूप पाया जाता है। उसके बाद भी आर्यो का विस्तार पूर्व की ओर होता रहा। उस समय की भाषा भी अपने विकसित रूप से और आगे बढ़ चुकी थी। वैदिक संस्कृत में यत्र तत्र भाषा सम्बन्धी अन्तर पाया जाता है। अत्यन्त प्राचीन रूप में रेफ का प्रयोग अधिकता से किया जाता था किन्तु बाद की संस्कृत में रेफ का प्रयोग कम हो गया तथा लकार के प्रयोग का आधिक्य हो गया। ऋग्वेद की प्राचीनतम भाषा में पुँल्लिंग आकारान्त शब्दों के प्रथमा द्विवचन में आ का प्रयोग अधिक किया जाता था जो ओग चल कर औ के रूप में प्रचलित हो गया। जैसे - द्वार सुपर्णा सयुजा सखाया में आकार का प्रयोग ऋग्वेद के दशम मण्डल में ''मा वामेतौ मा परेतो रिषाम् '' में औकार के रूप में प्रचलित हो गया। प्राचीन भाषा में तुमुन् प्रत्यय का अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा सम्बन्धी भिन्नता लौकिक संस्कृत की तुलना में अधिक हो गयी थी।

1.4.2 वैदिक भाषा की ध्वनियाँ

वैदिक भाषा में मूलतः बावन ध्वनियाँ हैं, जो इस प्रकार हैं-

1- मूलस्वर -ह्रस्व - अ, इ, उ, ऋ, लृ

दीर्घ - आ, ई, ऊ, ॠ

2- संयुक्त स्वर - ए (अ उदात्त इ) ओ (अउदात्त उ) औ (आ उदात्त उ)

3- स्वर्श व्यञ्जन - कण्ठ्य - क् ख् ग् घ् ङ् ।

तालव्य - च् छ् ज् झ् ञ् ।

मूर्धन्य - ट् ठ् ड् ढ् लह् ण्।

दन्त्य - त् थ् द् ध् न।

ओष्ठ्य - प् फ् ब् भ् म्।

4- अन्तः स्थ - य् र् ल् व्।

5- ऊष्म - श् (तालव्य) ष् (मूर्धन्य) स् (दन्तय)।

6- महाप्राण - ह्

7- शुद्ध अनुनासिक - अनुस्वार

8- अघोष संघर्षी -:

विसर्ग (विसर्जनीय)

- जिह्वामूलीय

- उपध्मानीय

इन ध्वनियों में कुछ ध्वनियों के विषय में विद्वान् एक मत नहीं हैं। कतिपय विद्वान् ए तथा ओ को मूल स्वर मानकर उनका संयुक्त रूप ऐ तथा औ मानते हैं। कुछ विद्वान संस्कृत की मूर्धन्य ध्वनियों को द्रविड भाषाओं से ली गयी बताते हैं।

घोष ह का अघोष ह विसर्गः माना जाता है। जिह्वामूलीय का उच्चारण ख की तरह होता था तथा उपध्मानीय का उच्चारण फ की तरह होता था। ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार ऋ ध्वनि का उच्चारण व र्स्त्य (तवर्ग) माना गया था। लृ ध्वनि का प्रयोग बहुत कम होता है। वैदिक भाषा में ड् तथा ढ् ध्वनियाँ जब दो स्वरों के बीच आती है तो उनका रूप ढ् लह् की भाँत होता हैं। वैदिक भाषा में कहीं-कहीं स् तथा म् से पहले आने वाले स् की जगह त् तथा द् हो जाता हैं।

वैदिक भाषा की पाँच अनुनासिक स्पर्श-ध्वनियों में न तथा म ध्वनियाँ स्वतन्त्र रूप से शब्द में किसी भी प्रकार प्रयोग की जा सकती हैं (अर्थात् प्रारम्भ में बीच में) अन्त में ङ्, ञ, न् अनुनासिक स्पर्श ध्वनियाँ शब्द के प्रारम्भ में प्रयोग नहीं की जाती हैं। ङ् का प्रयोग कण्ठ्य ध्वनियों के पहले ञ् का तालव्य ध्वनियों के पहले तथा न् का प्रयोग मूर्द्धन्य ध्वनियों के पहले किया जाता है। संस्कृत की ध्वनि श् तालव्य का विकास इण्डो ईरानी शाखा में हुआ। दन्त्य स् मूल भारोपीय भाषा की ध्वनि है।

मूर्धन्य ष् संस्कृत की भारतीय ध्वनि है।: विसर्ग या विसर्जनीय ध्वनि का विकास स् या र् ध्वनि से हुआ है। जब कवर्ग ध्वनियों से पहले विसर्ग आता है तो उच्चारण जिह्वामूलीय होता है तथा विसर्ग पवर्ग ध्वनियों से पहले आता है तो उच्चारण उपाध्मानीय होता है।

1.4.3 लौकिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत के पश्चात् लौकिक संस्कृत आती है। लौकिक संस्कृत का रूप धारण करते-करते वैदिक भाषा में कुछ परिवर्तन हो गये। इसी भिन्नता के कारण इसे लौकिक संस्कृत, देववाणी तथा देवभाषा कहा गया है। इसका साहित्य 8वीं शताब्दी ई0 पू0 से प्रारम्भ हो जाता है। 500 ई0 पू0 तक संस्कृत बोलचाल या जनसम्पर्क की भाषा रही है। शनेःशनैः इसके रूप में भी परिवर्तन होने लगे तो पाणिनि तथा अन्य महान् वैयाकरणों ने साहित्यिक रूप से शुद्ध बनाये रखने के लिए नियम बनाये। पाणिनि की अष्टाध्यायी इन सबमें अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुयी। संस्कृत का साहित्यिक रूप में नियमबद्ध होकर आज भी वैसा ही है परन्तु बोलचाल की भाषा विकसित होती रही जो बाद में प्राकृत, अपभ्रंश आदि रूपों में परिवर्तित होती रही। संस्कृत भाषा का प्रभाव सभी भारतीय भाषाओं पर पडा़ है और भारत के बाहर भी चीनी, जापानी, तिब्बती, द0पू0 ऐशियाई देशों की भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव मिलता है। वैदिक संस्कृत तथा लौकिक संस्कृत की ध्वनियाँ बहुत कुछ मिलती है। वैदिक संस्कृत की कुछ ध्वनियाँ जैसे ढ़् लह् जिह्वामूलीय तथा उपध्यानीय ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में नहीं पाई जाती है। वैदिक संस्कृत में स्वर तीन प्रकार के थे-

1. उदात्त
2. अनुदात्त
3. स्वरित।

स्वरों के उच्चारण पर विशेष ध्यान रखा जाता था। स्वर परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन भी हो जाता था। स्वर की शुद्धता का कितना महत्व था, यह इस श्लोक से प्रकट है-

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति,
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्।।

1.4.4 लौकिक संस्कृत की ध्वनियाँ

पाणिनीय व्याकरण मुख्य रूप से 14 माहेश्वर सूत्रो पर निर्भर है। पाणिनि ने तीर्थराज प्रयाग में अक्षवट के नीचे कठिन तपश्चर्या से भगवान् शिव को प्रसन्न कर लिया। प्रसन्न भगवान् शंकर ने ताण्डव नृत्य करते हुए उन्हें दर्शन दिया और 14 बार अपना डमरू बजाकर 14 सूत्रों का उपदेश दिया। ये 14 माहेश्वर सूत्र इस प्रकार हैं-

1. अइउण्।
2. ऋलृक्।
3. एओङ्।
4. ऐऔच्।
5. हयवरट्।
6. लण्।
7. ञमङणनम्।
8. झभञ्।
9. घढधष्।
10. जबगडदश्।
11. खफछठथचटतव्।
12. कपय्।
13. शषसर्।
14. हल्।

इन माहेश्वर सूत्रों में लौकिक संस्कृत ध्वनियाँ प्रस्तुत हुयी है। अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ, ये स्वर हैं जो कि चार माहेश्वर सूत्रों में प्रस्तुत हुए हैं। शेष 10 माहेश्वर सूत्रों में व्यञ्जन प्रस्तुत हुए हैं। पाणिनि ने स्वरों क ह्रस्व, दीर्घ औ प्लुत से तीन भेद प्रस्तुत किए हैं और इनक उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन भेद किए हैं।

1- उच्चैरूदात्त:। अष्टाध्यायी। 1/ 2/ 29।
2- नीचैरनुदात्त:। अष्टाध्यायी 1/2/ 30
3- समाहारः स्वरितः। अष्टाध्यायी 1/2/ 31।

ये नौ प्रकार के स्वर अनुनासिक और अननुनासिक भेद से 18 प्रकार के हो जाते हैं। इस प्रकार अ इ उ औ ऋ - इन वर्णों में प्रत्येक के 18 भेद होते हैं। दीर्घ न होने के कारण लृ वर्ण के 18

भेद न होकर 12 भेद होते हैं। ए ओ ऐ औ - के ह्रस्व न होने के कारण 18 भेद न होकर 12 भेद होते हैं। भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्तकौमुदी में इन वर्णों का उच्चारण स्थान वैज्ञानिक पद्धति से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार अ क् ख् ग् घ् ङ् ह् और: का उच्चारण स्थान कण्ठ है। इ च् छ् ज् झ् ञ् श् का उच्चारण स्थान तालु है। ऋ ट् ठ् ड् ढ् ण् और षृ का स्थान मूर्धा है। लृ त् थ् द् ध् न् ल् और स् का उच्चारण स्थान दन्त है। उ प् ब् भ् म् उपध्मानीय है प फ का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। ञ् म् ङ् ण् न् का उच्चारण स्थान नासिका भी है। एकार और ऐकार उच्चारण स्थान कण्ठ तालु है। ओकार और औकार का उच्चारण स्थान कण्ठ और ओष्ठ है। वकार का उच्चारण स्थान दन्त और ओष्ठ है। जिह्वामूलीय क ख का उच्चारण स्थान जीभ का मूल भाग है। अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है।

1.4.5 प्रयत्न के अनुसार ध्वनियों का वर्गीकरण

1-**स्पर्श या स्फोटक** - सघोष या अघोष होकर कंठपिटक से निकली वायु जब मुख में ओठों एवं जिह्वा के कारण थोडी देर पूरी तरह रूककर फिर तेजी से बाहर जाती है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ स्पर्श (व्यञ्जन) कहलाती है। मुख से वायु झटके से बाहर निकलती हे अतः इसको स्फोटक भी कहते हैं। स्पर्श वर्ण के से प्रारम्भ होकर म तक कुल 25 हैं। इनके पाँच वर्ग कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग सम्मिलित हैं।

2-**संघर्ष या संघर्षी** - जब ध्वनि उच्चारण के समय ध्वनि उत्पन्न करने वाले अवयव अधिक पास आ जाते हैं तथा वायु रगड़ती हुई बाहर निकलती है तो इस प्रकार की ध्वनि को संघर्षी ध्वनि कहते हैं। ध्वनि के काकल से ओठ तक भिन्न-भिन्न अवयवों से वायु से घर्षण होने के कारण कई ध्वनि भेद किए जा सकते हैं। संस्कृत की श् ष् स्, ह् संघर्षी ध्वनियाँ हैं । इनको ऊष्म ध्वनियाँ भी कहते हैं '- शल ऊष्माणः । इन ऊष्म ध्वनियों का उच्चारण स्वर के बिना भी किया जा सकता है। श् ष् स् अघोष ध्वनियाँ हैं। ह् ध्वनि सघोष है। हशः संवारा नादा घोषाश्च से भी यह निश्चित है कि ह् सघोष ध्वनि है। कुछ लोग ह् को अघोष भी मानते हैं।

3-**स्पर्श** - घर्ष या स्पर्श - संघर्षी ध्वनि उच्चारण के समय वायु पूरी तरह अवरूद्ध होकर स्पर्श करके फिर रगड़ती हुई धीरे- धीरे बाहर निकलती हैं यह स्थिति स्पर्श और घर्ष के बीच की है। हिन्दी में च् छ् ज् झ् ध्वनियाँ स्पर्श-घर्ष ध्वनियाँ मानी जाती है। संस्कृत में चवर्ग स्पर्श ध्वनियाँ मानी जाती हैं।

4-**अनुनासिक** - मुख तथा नासिका दोनों से जब वायु निकल कर ध्वनि उच्चरित करती है तो इस

प्रकार की ध्वनियों को अनुनासिक ध्वनि कहा जाता है। जैसा कि अष्टाध्यायी में पाणिनि ने लिखा है- मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः। अनुनासिक ध्वनियाँ ये हैं - ङ ञ्, ण्, न्, म् अर्थात् वर्गों के पञ्चमवर्ण । हिन्दी में दो अन्य ध्वनियाँ न्ह तथा म्ह को भी अनुनासिक ध्वनि माना जाता है। न् तथा म् इन दो अनुनासिक ध्वनियाँ का अधिक प्रयोग किया जाता है।

5- **पार्श्विक** -ध्वनि उच्चारण करते समय जब जीभ की नोक कठोर तालु को स्पर्श करके वायु को रोक लेती है तो वायु जीभ के एक या दोनो किनारों की ओर से पार्श्वों से निकल जाती है।

इस प्रकार उत्पन्न हुई ध्वनियों को पार्श्विक ध्वनियाँ कहते हैं। बोलते समय जिह्वा के एक पार्श्व या दोनों पार्श्वों से निकलते वाली वायु के आधार पर इसके दो भेद हैं-

1- एक पार्श्विक ध्वनि तथा 2- उभय पार्श्विक या द्विपार्श्विक ध्वनि। हिन्दी में ल तथा ल्ह पार्श्विक ध्वनियाँ मानी जाती हैं जैसे- लड़का अल्हड शब्दों में। संसार की अनेक भाषाओं में पाई जाने वाली पार्श्विक ध्वनियों के आधार पर इनके तीन भेद हैं- 1- वस्र्त्य 2- तालव्य तथा 3- मूर्धन्य। इनमें वस्र्व्य पार्श्विक ध्वनि के भी दो भाग शुक्ल पार्श्विक तथा कृष्ण पार्श्विक किए जाते हैं।

6- **लुंठित या लोडित** -जब बोलते समय बाहर निकलती वायु प्रभाव से कौआ हिलकर जीभ के पिछले भाग को स्पर्श करे अथवा जीभ की नोक वर्स्व को अनके बार छुए तो इस प्रकार उत्पन्न ध्वनियाँ लुंठित कहलाती हैं। इनमें अल्पप्राण सघोष ध्वनियाँ आती है। हिन्दी की र तथा रह ऐसी ही ध्वनियाँ हैं। से ध्वनियाँ शब्द के मध्य अधिक पायी जाती है। इस प्रकार के उदाहरण - रजाई, करहानो (ब्रज0 कराहना) शब्दों में देखे जा सकते हैं। ये ध्वनियाँ दो प्रकार की होती हैं वस्र्व्य लुंठित तथा अलिजिह्वीय लुंठित।

7- **उत्क्षिप्त** -ध्वनि उच्चारण के समय जीभ की नोक या कौए में एक बार ही तेज टक्कर लगने से ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे उत्क्षिप्त ध्वनि कहते हैं। इसके तीन भेद हैं - वस्र्व्य उत्क्षिप्त, मूर्धन्य, उत्क्षिप्त, तथा अलिजिह्वीय उत्क्षिप्त । हिन्दी में ड तथा ढ उत्क्षिप्त मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। वैदिक संस्कृत की क् कह् उत्क्षिप्त मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। प्रसिद्ध विद्वान् मारिओं पेई उत्क्षिप्त ध्वनियों को लुंठित ध्वनियों का ही भेद मानते हैं।

8- **अर्द्ध स्वर** - इन ध्वनियों को स्वर तथा व्यञ्जन ध्वनियों के मध्य रखा जाता है क्योंकि इनमें दोनों के गुण पाये जाते हैं । ये स्वरों की भाँति मुखर स्वराघात वहन करने में समर्थ तथा अक्षर संघटना में समर्थ नहीं हैं। स्वरों के इन तीन गुणों के अभाव से इन्हें स्वरों की श्रेणी में नहीं रखा जाता हे। इनमें स्वल्पमुखरता, स्वराघातहीनता, अक्षरसंघटना करने की असमर्थता आदि व्यञ्जनों के से गुण पाये जाते है। संस्कृत में अर्द्ध स्वरों को अन्तःस्थ बताया गया है, इनके अन्तर्गत य् व् र् ल् आते रूप में

होता है। वे न पूर्णतया स्वर होते हैं और न व्यञ्जन। ऐसी ध्वनियों को अर्धस्वर के नाम से पुकारा जाता है। (भाषाविज्ञान और हिन्दी)। इसी से मिलती परिभाषा श्री राजेन्द्र द्विवेदी की है। उन्होंने अपने ग्रन्थ भाषाशास्त्र का पारिभाषिक शब्दोश में लिखा है कि इनके उच्चारण में मुख द्वारा संकीर्ण तो करते हैं पर इतना नहीं कि रगड़ (संघर्ष) हो। इन्हें अर्द्धस्वर या व्यञ्जन और स्वर के बीच की ध्वनि माना जाता है। अन्तःस्थ वर्ण य् व् र् ल् व्यंजनधर्मी हैं किन्तु स्वरवत् भी माने गये हैं क्योंकि इनका अपने समस्थानीय स्वरों इ उ ऋ लृ से अत्यधिक सम्बन्ध है एवं इनमें अन्तः परिवर्तन भी होता है। जैसे इको यणचि सूत्र से विधान है कि इ उ ऋ लृ के स्थान पर क्रमशः य् व् र् ल् हो जाते हैं तथा इग्यणः सम्प्रसारणम् सूत्र से सम्प्रसारण होने पर पुनः इ उ ऋ लृ में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी समीपता के कारण इनको स्वरगत भी माना गया है। हिन्दी में य् व् अर्द्धस्वर माने जाते हैं। र् तथा ल् - व्यञ्जन हैं एवं ऋ लृ का स्वर की भाँति प्रयोग लुप्त हो गया है।

1.4.6 आभ्यन्तर एवं बाह्य भेद से ध्वनियों का वर्गीकरण-

प्रयत्न दो प्रकार के होते हैं- आभ्यंतर एवं बाह्य। मुख विवर के अन्दर होने वाले प्रयत्नों को आभ्यन्तर प्रयत्न कहते हैं। कंठ के नीचे जो प्रयत्न किये जाते हैं, वे बाह्य प्रयत्न कहलाते हैं।

1.4.6.1 आभ्यन्तर प्रयत्न

आभ्यन्तर प्रयत्न के अनुसार स्वरों का चार प्रकारों में तथा व्यञ्जनो को आठ प्रकारों में बाँटा गया है। से स्वर तथा व्यञ्जन के विभेद निम्न प्रकार हैं-

1. **संवृत स्वर-** जब ध्वनि उच्चारण के समय मुख द्वारा संकुचित रहता है तो उस प्रकार उत्पन्न ध्वनि को संवृत स्वर कहते हैं जैसे - इ-ई, उ-ऊ।

2**. संघर्षी -** ध्वनि उच्चारण के समय अधिक संकुचित मुख द्वारा से वायु घर्षण करती हुई निकलती हे तो उस समय उत्पन्न ध्वनियाँ संघर्षी ध्वनि कहलाती है। इस प्रकार की ध्वनियाँ हैं- फ ब स ज श ख ग ह।

3. **अनुनासिक** - जब वायु उच्चारण करते समय मुख् विवर तथा नासिका विवर से होकर बाहर जाती है तो अनुनासिक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। वर्गों के पंचम वर्ण अर्थात् ञ म ङ ण न अनुनासिक ध्वनियाँ हैं।

4. **पार्श्विक** - जब बाहर आती हुई वायु को जीभ ऊपर तालु से स्पर्श करके रोक लेती है तो वायु जीभ के एक या दोनो पार्श्वों की ओर से निकतली है, उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि को पार्श्विक कहते हैं। जैसे - ल।

5. **लुंठित** - जब ध्वनि उच्चारण करते समय जीभ कई बार मुख द्वार को खोलती बन्द करती है तो उस समय होने वाल ध्वनि लुण्ठित कहलाती है। जैसे - र। उत्क्षिप्त -जब जीभ की नोक परिवेष्टित होकर तालु को छूकर मुख विवर को झटके से खोल देती है तो जो ध्वनि उत्पन्न है उसे उत्क्षिप्त ध्वनि कहते हैं। जैसे - ड ढ।

6. **अर्धस्वर-** बोलते समय मुख के अधिक संकुचित होने से वायु स्वर की तरह ध्वनि करती बाहर निकल जाती है तो उसे अर्धस्वर कहते हैं। जैसे - य व ।

1.4.6.2 बाह्य प्रयत्न

बाह्य प्रयत्न के अनुसार ध्वनियों को 11 भागों में बांटा गया है जो इस प्रकार है-

1. विवार
2. संवार
3. श्वास
4. नाद
5. अघोष
6. घोष
7. अल्पप्राण
8. महाप्राण
9. उदात्त
10. अनुदात्त
11. स्वरित।

कुछ विद्वान् बाह्य प्रयत्नों को तीन भागों में बांटते हैं।

1. स्वरयन्त्रीय प्रयत्न (कण्ठ्य) श्वास तथा नाद।
2. औरस्य या उरस्य प्रयत्न- महाप्राण तथा अल्पप्राण।
3. अनुनासिक प्रयत्न- अननुनासिक तथा अनुनासिक।

कुछ ध्वनिविद् (महाभाष्यकार आदि) के अनुसार बाह्य प्रयत्न आठ प्रकार के होते हैं-विवार-संवार, श्वास-नाद, घोष- अघोष, अल्पप्राण-महाप्राण।

प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् कैयट एवं भट्टोजि दीक्षित आदि ने इन विभागों में उदात्त अनुदात्त तथा स्वरित को सम्मिलित करके बताया है कि बाह्य प्रयत्न कुल ग्यारह प्रकार के होते हैं-

1. विवार
2. संवार

3. श्वास
4. नाद
5. अघोष
6. घोष
7. अल्पप्राण
8. महाप्राण
9. उदात्त
10. अनुदात्त
11. स्वरित।

1.4.6.3 संस्कृत वैयाकरणों द्वारा ध्वनि विभाजन

ध्वनि समूह को संस्कृत वैयाकरणों ने पांच भागों में विभाजित किया है जो इस प्राकर है-

1. **संवृत स्वर**

2. **अर्द्ध संवृत स्वर** -जब उच्चारण करते समय मुख आधा संकुचित होता है तो उस समय उत्पन्न ध्वनि अर्द्ध-संवृत होती है। उच्चारण की दृष्टि से यह संवृत ध्वनि की ओर झुकी होती है। इस प्रकार के अर्द्ध संवृत स्वर ए तथा ओ हैं।

3. **अर्द्ध विवृत स्वर**-जब ध्वनि उच्चारण के समय मुख आधा खुलता है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि अर्द्ध विवृत स्वर कहलाती है। यह ध्वनि उत्पन्न होने की दृष्टि से विवृत ध्वनि की ओर झुकी होती है। इस प्रकार की ध्वनियाँ - ऐ तथा औ हैं।

4 .**विवृत** - स्वर- ध्वनि उच्चारण के समय जब मुख द्वार पूरा खुलता है तो उस समय उत्पन्न ध्वनि

को विवृत - स्वर कहते हैं जैसे - अ, आ।

जीभ के अगले मध्य तथा अन्तिम भाग की सहायता से जिन स्वरों की उत्पत्तियॉ होती है उन्हें अग्रस्वर, मध्यस्वर तथा पश्चस्वर कहते हैं। अग्रस्वर - ई ए ऐ मध्य स्वर- अ तथा पश्च स्वर- आ, ऊ, और ओ हैं।

5. **स्पर्श व्यंजन-** जब वायु मुख में ध्वनि उत्पन्न करने वाले अवयवों को स्पर्श करती हुई निकलती है तो स्पर्श ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं। इस प्रकार की स्पर्श ध्वनियाँ व्यञ्जन हैं- क ख ग घ ट ठ ड ढ त थ द ध प फ ब भ।

स्पर्श संघर्षी - जब वायु मुख में अवरूद्ध होकर उच्चारण अवयवों से रगड़ती (घर्षण करती) निकलती है तो इस प्रकार उत्पन्न होने वाली ध्वनियों को स्पर्श संघर्षी कहा जाता है। संस्कृत की

स्पर्श ध्वनियाँ हैं - च क ज झ।

स्पृष्ट - स्पर्श वर्णों के उच्चारण का जो प्रयत्न किया जाता है, उसे स्पृष्ट कहते हैं। इन ध्वनियों को बोलते समय जिह्वा मुख के विभिन्न स्थानों का पूरी तरह स्पर्श करती हैं। क से म तक के वर्णों को स्पृष्ट या स्पर्श कहते हैं (कादयो मावसानाः स्पर्शाः)।

ईषत्स्पृष्ट - जब जीभ उच्चारण अवयवों का थोडा़ स्पर्श करती है तो उस समय उत्पन्न होने वाल ध्वनि को ईषत् स्पृष्ट कहते हैं। इन ध्वनियों की स्थिति स्वर तथा व्यञ्जन के बीच की होती है। अतः इनको अन्तःस्थ भी कहा जाता है। इन ध्वनियों को अर्ध - स्वर भी कहते हैं। ईषत्स्पृष्ट ध्वनियाँ य र ल व हैं (यणोऽन्तस्थाः)।

ईषद्विवृत (ईषद्विवृत) - इनके उच्चारण के समय मुख पूरी तरह खुल जाता है। इनको ऊष्म ध्वनियाँ भी कहते हैं। ऊष्म ध्वनियाँ हैं - श ष स तथा ह (शल ऊष्माणः)।

विवृत - इन ध्वनियों के उच्चारण में जीभ थोडा़ ऊपर उठती है किन्तु मुख विवर खुला रहता है। इस प्रकार के उच्चारण प्रयत्न को विवृत कहते हैं। विवृत स्वर हैं - अ आ इ ई उ ऊ ए से ओ औ (अचः स्वराः)।

संवृत - जब ध्वनि उच्चारण के समय जिह्वा द्वारा कोई विशेष कार्य नहीं किया जाता तथा उसकी दशा निष्क्रिय जैसी होती है। इस प्रकार 'अ' ध्वनि उत्पन्न होती है। डॉ0 तारापुरवाला के अनुसार संवृत -ध्वनि उच्चारण में जीभ का अग्र तथा पश्च भाग थोडे उठते हैं तथा जिह्वा का बीच का भाग थोडा़ धँस जाता है। वर्गो के प्रथम, द्वितीय वर्णों एव श ष स का बाह्य प्रयत्न विवार श्वास अघोष होता है (खरों-विवाराः श्वासा अघोषश्च।) वर्गो के तृतीय, चतुर्थ, पचंम वर्ण तथा य व र ल ह (अर्थात्

हश् प्रत्याहार के वर्ण) का बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष है (हशः संवारा नादा घोषाश्च)।

स्वर ध्वनियों के अनेक भेद होते हैं। प्रमुखतः मात्रा काल के अनुसार ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत तीन प्रकार के भेद होते हैं। इनमें से प्रत्येक को उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित भेदों में बांटा गया है। पुनः प्रत्येक स्वर के अनुनासिक एवं अननुासिक भेद होते हैं। इस प्रकार अ इ उ ऋ स्वरों के अठारह भेद, दीर्घ न होने से लृकार के 12 भेद तथा ए ऐ ओ औ के ह्रस्व न होने से 12 बारह भेद होते हैं।

1.4.6.4 बाह्य प्रयत्न के आधार पर ध्वनियों के ग्यारह भेदों का विश्लेषण

1. **विवार** -जब गला खुलकर ध्वनि का उच्चारण करता है उस समय जो ध्वनियाँ निकलती हैं, वे विवार कहलाती है।

2.**संवार**-स्वरन्त्रियों के बन्द रहने की स्थिति में जो ध्वनियाँ निकलती हैं, वे संवार कहलाती है।

3. **श्वास**-इसमें श्वास निर्बाध रूप से चलती है।

4. **नाद**- संवार की स्थिति में अर्थात् स्वरन्त्रियों के पास पास स्थित होने से गलविल संकुचित हो जाता है तथा वायु घर्षण करती हुई बाहर निकलती हुई है तो उसे नाद कहते हैं।

5. **घोष** -नाद की स्थिति में अर्थात् गलविल संकुचित होने पर जब हवा स्वरतन्त्रियों से रगड़कर ध्वनि उत्पन्न करती है तो उसे घोष कहते हैं। वर्गों के तीसरे, चौथे तथा पांचवे वर्ण (अर्थात् ग घ ङ ज झ ञ ड ढ ण द ध न ब भ म) घोष कहलाते हैं।

6. **अघोष** -श्वास की स्थिति में अर्थात् स्वरतिन्त्रयों के दूर-दूर रहने पर बिना घर्षण के वायु बाहर निकलती है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाल कम्परहित ध्वनि को अघोष कहते हैं। वर्गों के पहले तथा दूसरे वर्ण अर्थात् क ख च छ ट ठ त थ प फ इसी प्रकार के अघोष वर्ण हैं।

7. **अल्पप्राण-** फेफडों से बाहर आती श्वास वायु का वेग जब कम रहता है तो उस समय उत्पन्न होने वाल ध्वनियाँ अल्पप्राण कहलाती है। जैसे - क च त प आदि।

8. **महप्राण**-फेफडों से बाहर आती श्वास वायु का वेग जब अधिक रहता है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ महाप्राण कहलाती हैं। वर्गों के दूसरे एवं चौथे वर्ण महाप्राण ध्वनियाँ हैं। जैसे - ख घ छ झ आदि।

9. **उदात्त** - जब किसी स्वर को उच्च सुर (आरोह) से बोला जाता है तो उसे उदात्त कहते हैं। जैसी कि (अष्टाध्यायी 1/2/29 मे) परिभाषा है उच्चैरूदात्त:।

10. **अनुदात्त** - जब किसी स्वर का मध्य या निम्न सुर (अवरोह) से उच्चारण किया जाय तो उसे अनुदात्त कहते हैं – नीचैरनुदात्त:।

11. **स्वरित**- जिस स्वर में उदात्त एव अनुदात्त सुर से होकर अन्त अनुदात्त सुर उच्चारण से करते हैं, उसे स्वरित कहते हैं। जैसा कि काह है- समाहारः स्वरितः इन तीनों उदात्त अनुदात्त, स्वरित का सम्बन्ध केवल स्वरों से होता है।

1.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं-

1. संस्कृत ध्वनियों का विकास क्रमशः हुआ है।
2. इनका मूल आधार वैदिक वाङ्यम है ।
3. वैदिक भाषा में मूलतः बावन ध्वनियाँ हैं।
4. स्वरों एवं व्यंजनों का मूलतः विभाजन है।
5. वैदिक संस्कृत तथा मौलिक संस्कृत की ध्वनियाँ बहुत कुछ मिलती सी हैं।
6. 14 माहेश्वरसूत्रों में लौकिक संस्कृत की ध्वनियाँ प्रस्तुत हुई हैं।
7. ह्रस्व, दीर्घ , प्लुत, उदातअनुदात्त, स्वरित आदि भेदों से स्वरों का निरूपण हुआ है।
8. ध्वनियों का उच्चारण स्थान के आधार पर वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।
9. ध्वनियों के उच्चारण के प्रयत्न का विवेचन किया गया है।
10. आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयत्नों पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है।
11. ध्वनियों के स्पर्श ,घर्ष, स्पर्श संघर्षी, , लोडित, उत्क्षिप्त, अर्द्धस्वर आदि रूपों में अध्ययन किया गया है।

1.6 शब्दावली

ध्वनि - शब्द ध्वन् धातु में 'इ' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। अ, आ, इ, ई आदि स्वर और क् ख् ग् आदि व्यञ्जन भाषाविज्ञान में ध्वनि कहलाते हैं वैदिक संस्कृत -वेदों से सम्बन्धित संस्कृत को वैदिक संस्कृत कहते हैं। इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अर्थवेद, बाह्मण, आरण्यक और उपनिषद् मुख्य रूप से आते हैं।

संयुक्त स्वर - ए (अ उदात्त इ,) ऐ (आ उदात्त इ), ओ (आ उदात्त उ), औ(आ उदात्त उ) येस्वरसंयुक्त कहलाते हैं।

अन्तःस्थ - य, र् ल् व ये अन्तःस्थ कहलाते हैं।

ऊष्म - श (तालव्य) ष् (मूर्धन्य) स् (दन्त्य) से ऊष्म कहलाते हैं।

लौकिक संस्कृत -वैदिक संस्कृत के पश्चात् लौकिक संस्कृत आती है। लौकिक संस्कृत के आदि महाकाव्य के रूप में महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण है।

माहेश्वर सूत्र-माहेश्वर अर्थात् भगवान् शिव के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण अइउण् आदि 14 सूत्रों को माहेश्वर सूत्र कहते हैं।

स्पर्श-सघोष आ अघोष होकर कंठपिटक से निकली वायु जब मुख में ओठों एवं जिह्वा के कारण थोडी़ देर पूरी तरह रूककर फिर तेजी से बाहर जाती है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ स्पर्श व्यञ्जन कहलाती हैं।

संघर्षी- जब ध्वनि उच्चारण के समय ध्वनि उत्पन्न करने वाले अवयव अधिक पास आ जाते हैं तथा वायु रगड़ती हुयी बाहर निकलती है तो इस प्रकार की ध्वनि को संघर्षी ध्वनि कहते हैं।

पार्श्विक -ध्वनि उच्चारण करते समय जब जीभ की नोक कठोर तालु को स्पर्श करके वायु को रोक लेती है तो वायु जीभ के एक बार या दोनों किनारों की ओर से पार्श्वों से निकल जाती है। इस प्रकार उत्पन्न हुई ध्वनियों को पार्श्विक ध्वनियाँ कहते हैं।

उत्क्षिप्त-ध्वनि उच्चारण के समय जीभ की नोक या कौए में एक बार ही तेज टक्ककर लगने से ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे उत्क्षिप्त ध्वनि कहते हैं।

विवृत स्वर-ध्वनि उच्चारण के समय जब मुख द्वारा पूरा खुलता है तो उस समय उत्पन्न ध्वनि को विवृत-स्वर कहते हैं। जैसे - अ, आ।

स्पृष्ट--स्पर्श वर्णों के उच्चारण का जो प्रयत्न किया जाता है, उसे स्पृष्ट कहते हैं। इन ध्वनियों को बोलते समय जिह्वा मुख क विभिन्न स्थानों का पूरी तरह स्पर्श करती है। क् से म् तक के वर्णों को स्पृष्ट या स्पर्श कहते हैं।

ईषत्स्पृष्ट-जब जीभ ध्वनि उच्चारण अवयवों को थोडा़ स्पर्श करती है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि को ईषत् स्पृष्ट कहते हैं। इन ध्वनियों की स्थिति स्वर तथा व्यञ्जन के बीच की होती है। अतः इसनको अन्तःस्थ भी कहा जाता है। इन ध्वनियों का अर्थ - स्वर भी कहते हैं। ईषत्स्पृष्ट ध्वनियाँ य् र् ल् व् है (यणोऽन्तस्थाः)।

विवृत-ध्वनियों के उच्चारण में जीभ थोडा़ ऊपर उठती है किन्तु मुख विवर खुला रहता है।

विवार -जब गला खुलकर ध्वनि का उच्चारण करता है उस समय जो ध्वनियाँ निकती हैं, वे विवार कहलाती हैं।

संवार-स्वरतन्त्रियों के बन्द रहने की स्थिति में जो ध्वनियाँ निकलती हैं, वे संवार कहलाती हैं।

श्वास-इसमें श्वास निर्बाध रूप से चलती है।

घोष- नाद की स्थिति में अर्थात् गलविल संकुचित होने पर जब हवा स्वरन्त्रियों से रगड़कर ध्वनि उत्पन्न करती है तो उसे घोष कहते हैं।

महाप्राण-फेफडो़ से बाहर आती श्वास वायु का वेग जब अधिक रहता है तो उस समय उत्पन्न होने वाली ध्वनियाँ महाप्रणाण कहलाती है। वर्गों के दूसरे एवं चौथे वर्ण महाप्राण ध्वनियाँ है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उतर

क-प्रश्न 1 - संस्कृतध्वनियों का प्राचीन रूप किस भाषा में सुरक्षित है?

उतर - संस्कृत ध्वनियों का प्राचीन रूप वैदिक भाषा में सुरक्षित है।

प्रश्न 2 - ध्वनि किसे कहते हैं?

उतर - ध्वनि शब्द ध्वन् धातु से इ प्रत्यय के योग से बनता है। अ आ इ ई आदि स्वर और क् ख् ग् आदि व्यञ्जन भाषा विज्ञान में ध्वनि कहलाते हैं। साहित्यशास्त्र में काव्यध्वनि को जिसमें व्यञ्जना की प्रधानता रहती है विशेष महत्व दिय गया है। रसगगांधर में ध्वनि के पांच भेद बतलाये गये हैं।

प्रश्न - 3 वैदिक संस्कृत को क्या कहा गया था?

उतर - छन्दस्।

प्रश्न 4 - वैदिक संस्कृत में मुख्य रूप से कौन सा साहित्य आता है?

उतर - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अर्थवेद, बाह्मण, आरण्यक और उपनिषद्।

प्रश्न 5 - ऋग्वेद की प्राचीनतम भाषा में पुँल्लिंग आकारान्त शब्दों के प्रथमा द्विवचन में किस स्वर का अधिक प्रयोग किया जाता था?

उतर - 'आ'।

प्रश्न 6 - वैदिक भाषा में मूलतः कितनी ध्वनियाँ थीं।

उतर - 52 ध्वनियाँ।

प्रश्न 7 - वैदिक मूल स्वरों का उल्लेख कीजिए।

उतर - 'क' मलस्वर - ह्रस्व - अ इ उ ऋ लृ

'ख' दीर्घस्वर - आ, ई, ऊ, ॠ।

प्रश्न 8 - संयुक्त स्वरों का उल्लेख कीजिए।

उतर - ए (अ उदात्त इ,) ऐ (आ उदात्त इ), ओ (आ उदात्त उ), औ (आउदात्त उ)

प्रश्न 9 - स्पर्शव्यजनों का उल्लेख कीजिए।

उतर - स्पर्श व्यञ्जन इस प्रकार हैं।

कण्ठ्य - क् ख् ग् घ् ङ्।

तालव्य - च् छ् ज् झ् ञ्।

मूर्धन्य - ट ठ् ड् ढ् (लह्) ण्।

दन्त्य - त् थ् द् ध् न्।

ओष्ठ्य - प् फ् ब् भ् म्।

प्रश्न 10 - अन्तः स्थों का उल्लेख कीजिए।

उतर - य्, र्, ल्, व्।

प्रश्न 11 - ऊष्मों का उल्लेख कीजिए।

उतर - श् (तालव्य) ष् (मूर्धन्य) स् (दन्तय)।

प्रश्न 12 -महाप्राण का उल्लेख कीजिए।

उतर - ह्।

प्रश्न 13 -शुद्ध अनुनासिक का उल्लेख कीजिए।

उतर - अनुस्वार।

प्रश्न 14 -जिह्वामूलीय का उच्चारण किस तरह होता था ?

उतर - ख की तरह।

प्रश्न 15 -उपध्मानीय का उच्चारण किस तरह होता था?

उतर - फ की तरह।

प्रश्न 16 -दन्त्य 'स् ' किस भाषा की ध्वनि है?

उतर - दन्त्य 'स्' मूल भारोपीय भाषा की ध्वनि है।

प्रश्न 17 -विसर्ग या विसर्जनीय ध्वनि का विकास किस ध्वनि से हुआ है?

उतर - 'स्' या 'र्' से।

प्रश्न 18 -वैदिक संस्कृत में कितने प्रकार के स्वर थे?

उतर - वैदिक संस्कृत में तीन प्रकार के स्वर थे - 1, उदात्त 2, अनुदात्त और 3, स्वरित।

प्रश्न 19 -माहेश्वर सूत्र कितने हैं?

उतर - 14

प्रश्न 20 - अकार के कितने भेद हैं।

उतर - 18

प्रश्न 21 - लृ वर्ण के कितने भेद हैं?

उतर - 12

प्रश्न 22 - ऐ और औ के कितने भेद हैं?

उतर - 12

ख -

प्रश्न 1 - वेद कितने हैं ?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पाँच

उतर - (ग) चार।

प्रश्न 2 - वैदिक भाषा में मूलतः कितनी ध्वनियाँ थीं?

(क) 50 (ख) 51

(ग) 52 (घ) 54

उतर - (ग) 52

प्रश्न 3 - महाप्राण है-

(क) अ (ख) क

(ग) ह (घ) ग

उतर - (ग) ह ।

प्रश्न 4 - लृवर्ण के भेद हैं-

(क) 8 (ख) 10

(ग) 12 (घ) 18

उतर - (ग) 12

प्रश्न 5 - य् है-

(क) महाप्राण (ख) ऊष्म

(ग) अन्तः स्थ (घ) अनुनासिक

उतर - (ग) अन्त: स्थ।

प्रश्न 6 - औ के कितने भेद हैं?

(क) 10 (ख) 12

(ग) 16 (घ) 18

उतर - (ख) 12।

प्रश्न 7 - अकार के कितने भेद हैं?

(क) 12 (ख) 16

(ग) 18 (घ) 24

उतर - (ग) 18।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली ।

5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी ।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली ।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

क- 1. संस्कृतध्वनियों के विकासक्रम पर प्रकाश डालिये ।

2. वैदिक भाषा की ध्वनियों की समीक्ष कीजिए।

3, लौकिक संस्कृत की ध्वनियों पर प्रकाश डालिए।

4, पाणिनि के अनुस्वार ध्वनियों का विश्लेषण कीजिये।

5. ध्वनियों के उच्चारणस्थानों का निरूपण कीजिये।

6, आभ्यन्तर एवं बाह्य प्रयत्नों पर प्रकाश डालिये।

ख - निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

1. वैदिक ध्वनियाँ
2. ध्वनि भेद
3. आभ्यन्तर प्रयत्न 4. बाह्यप्रयत्न

इकाई 2 .ध्वनि परिवर्तन के कारण तथा दिशाएँ

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषाविज्ञान में ध्वनियों का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। अतएव भाषाविज्ञान में ध्वनियों का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। पूर्व इकाई में संस्कृत ध्वनियों के विकास क्रम पर प्रकाश डाला जा चुका है।

प्रस्तुत इकाई में ध्वनि परिवर्तन के कारण और दिशाओं पर प्रकाश डाला जायेगा। ध्वनि परिपवर्तन एक सहज प्रक्रिया है, क्योंकि उच्चारण करने पर किसी न किसी प्रकार से ध्वनि परिवर्तित हो जाती है। इस ध्वनि परिवर्तन के अनेक कारण हैं।

इस इकाई में ध्वनि परिवर्तन के कारणों और दिशाओं को प्रस्तुत किया जायेगा। ध्वनि परिवर्तत के मुख्य रूप से आभ्यन्तर और बाह्य कारण हैं। यहाँ इन कारणों को प्रस्तुत किया गया है, जिससे आप ध्वनि परिवर्तन के कारण और दिशाएँ समझ सकेंगे और इस विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप-

- ध्वनि परिवर्तन के कारणों और दिशाओं को समझ पायेंगे।
- ध्वनि परिवर्तन एक सहज प्रक्रिया हैं, अतएव ध्वनि परिवर्तन होता रहता है।
- ध्वनि परिवर्तन के क्या कारण है? इसको आप जान सकेंगे।
- ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं का ज्ञान कर सकेंगे।
- ध्वनि परिवर्तत के आभ्यन्तर और बाह्य कारणों की जानकारी पा सकेंगे।
- यह समझ सकेंगे की किस प्रकार द्वादश के सादृश्य पर एकदश भी एकादश बन जाता है?
- यह भी जानकारी कर सकेंगे कि किस प्रकार प्रयत्न- लाघव, अशिक्षा और अज्ञान, अनुकरण की अपूर्णता, भावुकता आदि के कारण ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है।
- यह भी जानकारी कर सकेंगे कि किस प्रकार विपर्यय आदि के द्वारा ध्वनि परिवर्तन हो जाता है।
- अपश्रुति आदि के द्वारा कृष्ण , चत्वारः को चतुरः आदि हो जाते हैं

2.3 ध्वनि परिवर्तन के कारण तथा दिशाएँ- अर्थ एवं स्वरूप

परिवर्तन प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रिया है। संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। परिवर्तन की इस गति का प्रभाव भाषाओं पर भी पड़ता है। संसर की भाषाओं में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। भाषा में यह परिवर्तन कई प्रकार से होता है। यह परिवर्तन ध्वनि में, रूप में और अर्थ में सहज रूप से

दृष्टिगोचर होता है। भाषा में कभी-कभी कुछ ध्वनियों का प्रयोग कम हो जाता है। कुछ ध्वनियाँ धीरे-धीरे लुप्त हो जाती है और कनिपय नवीन ध्वनियों का समावेश हो जाता है। इन ध्वनिपरिवर्तनों के अनेक कारण हैं। उदाहरण के लिए स्वर्ग शब्द के अनुकरण पर हिन्द में नरक के स्थान पर नर्क का प्रयोग किया जाने लगा है।

इसी प्रकार अनेक कारणों से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि इस परिवर्तन के योग से ही हिंस परिवर्तित होकर व्यत्यय से सिंह बन जाता है।

2.4 ध्वनि परिवर्तन के कारण तथा दिशाएँ

2.4.1 ध्वनि परिवर्तन के कारण-

संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। परिवर्तन का चक्र जीवन के हर क्षेत्र में सतत चलता रहता है। मनुष्य की जातियाँ तथा उनके स्थान, वेशभूषा, रहन-सहन बदल जाते हैं। परिवर्तन की गति का प्रभाव संसर की सभी भाषाओं पर भी पड़ता है। भाषाओं का जो रूप आज से हजारों वर्ष पूर्व था वह अब नहीं है। संसार की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, ग्रीक, लैटिन के रूप में परिवर्तन होने से बाद में अनेक भाषाओं का जन्म हुआ, जिनमें अधिकांश वर्तमान समय में विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती है। भाषाओं में इस प्रकार होने वाले परिवर्तन को भाषाविज्ञानी 'विकारी' अथावा 'विकास ' कहते हैं। भाषा में यह परिवर्तन कई प्रकार से होता है- ध्वनि में, रूप में या अर्थ में। कभी-कभी सिखाने-सीखने की प्रक्रिया में कुछ ध्वनियों का प्रयोग कम हो जाता है। धीरे-धीरे लुप्त भी हो जाता है। कुछ नवीन ध्वनियों का समावेश हो जाता है। उच्चारण सम्बन्धी अन्तर होने से भी परिवर्तन हो जाते हैं। कभी-कभी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक कारणों से भाषा में ध्वनि-सम्बन्धी परिवर्तन होते रहते हैं। ध्वनि परिवर्तनों को साधारणतया कारणों से भाषा में ध्वनि -सम्बन्धी परिवर्तन होते रहते हैं। ध्वनि परिवर्तनों को साधारणतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। जब ध्वनि -उच्चारण करने वालों के प्रभाव से ध्वनियों में अन्तर उत्पन्न हो जाता है, तो उन्हें आभ्यन्तर कारण कहा जाता है। परन्तु जब भाषा की ध्वनियाँ अन्य कारणों से प्रभावित होती है जैसे- राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक आदि तो इस तरह के परिवर्तन बाह्य कारण कहलाते हैं। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन के कारण दो प्रकार के होते हैं ।

1. आभ्यन्तर कारण
2. बाह्य कारण

2.4.2 ध्वनि परिवर्तन के आभ्यन्तर कारण

ध्वनि परिवर्तन लाने वाले प्रमुख आभ्यन्तरण कारण इस प्रकार है-

1. **मुख -सुख** (प्रयत्न-लाघव)-मनुष्य ध्वनियों का उच्चारण अपनी सुविधा से करता है। बोलते समय उसकी इच्छा रहती है कि कम अथवा शीघ्र उच्चारण करके अपना अभिप्राय श्रोता पर प्रकट कर दे। इस प्रकार अधिक श्रम से बचने का प्रयास रहता है। जब किसी उच्चारण में कठिनाई होती है अथवा ठीक से उच्चारण नहीं किया जा सकता है तो व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए उस उच्चारण को छोड़ अपने ढंग से उच्चारण करने लगता है, इसे मुख-सुख कहते हैं।

अन्धकार को अँधेरा, स्कूल की इस्कूल, स्टेशन को इस्टेशन (सटेशन), बाह्मण को ब्राम्हण (या वामन), कृष्ण को क्रिस्न आदि उच्चारण करते हैं। अंग्रजी के शब्दों की कुछ ध्वनियों का उच्चारण नहीं किया जाता है, क्योंकि उनके उच्चारण में कठिनाई होती है, । दो भिन्न-भिन्न ध्वनियों को एक सा बना दिया जाता है जैसे - धर्म का धम्म अथवा ध्वनि में पूर्ण परिवर्तन कर दिया जाता है जैसे काक से काग शब्द बनते हैं। यह प्रयत्न - लाघव के कारण होता है अर्थात् थोड़े में तथा सरलतापूर्ण उच्चारण करने की प्रवृत्तियॉ काम करती है। ध्वनियों का विकास सरलता की ओर रहता है अनेक प्राचीन ध्वनियों के उच्चारण में अब परिवर्तन हो गया है। वैदिक क्रिया रूप, वचन, लिंग, कारक रूपों की भिन्नता में सरलीकरण के कारण ही बहुत कमी आ गयी है। दीर्घ स्वरों को कभी-कभी हस्व स्वरों में बदल दिया गया है। आकाश से अकास, नारायण से नरायन, वार्ता से बात, दूर्वा से दूब आदि इसी प्रकार के शब्द है। इसी तरह से बज्राङ्ग से बजरांग एवं बजरंग रूप बन गया है, जो अब बहुत प्रचलित हो गया है।

इसी प्रकार प्रयत्न-लाघव के प्रभाव से अनके विदेशी शब्दों में भी परिवर्तन हुए हैं। अरबी शब्द- अमीर-उल्-बहर (समुद्र का शासक) आगे चलकर अंग्रजी के ‘एडमिरल (जलसेनापति) के रूप में परिवर्तित रूप प्रयोग करते हैं। जैसे रूपनारायण को रूपा, विष्णु को विशुन आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इसी प्रकार अनके शब्द हैं जो संक्षिप्त रूप में प्रयोग किए जाते हैं। जैसे- माइक्रोफोन को माइक, टेलीविजन को टी0वी0, एरोप्लेन को प्लेन आदि। कभी-कभी लिखित रूप तथा उच्चरित रूप में अन्तर पड़ जाता है। अंग्रजी भाषा में इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। ज्ञपहीज का उच्चारण ‘नाइट होता है जिसमें ‘क’ तथा ‘घ’ ध्वनियाँ नहीं बोली जाती है । इसी प्रकार (डॉटर), थ्रू जैसे शब्दों का लिखित रूप कहे जाने वाले रूप से भिन्न होता है। संस्कृत की भी कई ध्वनियों के उच्चारण में आगे चलकर अन्तर आ गया। जैसे ‘ष’ तथा ‘ऋ’ ध्वनियों का उच्चारण ठीक प्रकार नहीं किया जाता है। कभी-कभी कुछ नई ध्वनियों का भाषा में आगम हो जाता है एंग्लो - सेक्सन (anglo saxon)में ‘च’ ध्वनि बाद में आई है इससे चर्च (church)चीज (cheese) जैसे शब्द बने हैं। इसी तरह संस्कृत में ट वर्ग की ध्वनियाँ द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव से आई हैं, अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि ‘ध्वनि-परिवर्तन’ या ‘ध्वनि’ ‘विकार’ में पयत्न -लाघव अथवा मुख-सुख का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

2.बोलने में शीघ्रता-शीघ्रता से बोलने के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। प्रायः बातचीत में देखा जाता है कि शब्दों का उच्चारण शीघ्रता से होने के कारण ध्वनियों का रूप ठीक नहीं रहता है। जैसे - पंडितजी को पंडी जी, मास्टर साहब को मास्साब, मार डाला को माड्डाला आदि रूपों में उच्चारण किया जाता हे। अंग्रेजी में इसी प्रकार के शब्द रूप पाए जाते हैं, जो बोलने के कारण संक्षिप्त हो जाते हैं, जैसे 'वुड नॉट'(would not)को 'वोन्ट'(wont) तथा डू नॉट (do not) को डोन्ट (dont) आदि। अब ही को अभी, तब ही को तभी आदि रूपों में उच्चारित करते हैं।

3.**अशिक्षा तथा अज्ञान**- अशिक्षा एवं अज्ञान के कारण भी ध्वनियों में परिवर्तन होता रहता है। शिक्षित व्यक्ति भाषा को सही ढंग से पढ़-लिख सकता है तथा शब्दों को शुद्ध रूप में ग्रहण कर सकता है, किन्तु अशिक्षित व्यक्ति ध्वनि के वास्तविक स्वरूप से अपरिचित रहता है तथा कथित रूप को सुनकर उसी को अपने अनुसार प्रयोग करने लगता है। इस प्रकार ध्वनियों के अनुचित प्रयोग से ध्वनियों में परिवर्तन आने लगता है । अज्ञान के कारण अनेक विदेशी शब्दों का उच्चारण ठीक से न समझने के कारण ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। जैसे - रिपोर्ट को रपट, कम्पाउन्डर को काम्पोडर, ओवरसियर का ओसियर, स्टेशन को टेशन, यूनिवर्सिटी का अनवर्सिटी हो जाते हैं। अज्ञान तथा अशिक्षा के कारण ध्वनियों में ध्वनि विपर्यय, मात्रा भेद, घोषीकरण, अघोषीकरण, महाप्राणीकरण, अल्पप्राणीकरण जैसे परिवर्तन होते रहते हैं। अज्ञान के कारण जिन व्यक्तियों को ध्वनियों के उचित रूप का पता नहीं रहता है, वे त्रटिपूर्ण ध्वनि-उच्चारण करते रहते हैं। सादृश्य के कारण भी ध्वनि परिवर्तन हो जाते हैं। स्वर्ग के सादृश्य पर नरक का नर्क बना लिया गया है। 'एकादश' द्वादश के सादृश्य पर 'एकादश' बना लिया गया है । इस प्रकार अज्ञान तथा अशिक्षा के कारण ध्वनियों के सही रूप से अपरिचित लोग ध्वनि परिवर्तन करते रहते हैं

4. **अनुकरण की अपूर्णता**- जब कोई व्यक्ति किसी ध्वनि का उच्चारण करता है तो दूसरा व्यक्ति उसका अनुकरण करके सीख लेता है। परन्तु अनुकरण में त्रटियाँ हो जाती हैं। सही अनुकारण नहीं हो पाता या उच्चारण में कुछ न कुछ कमी हो जाती है। इस प्रकार अनुकरण अपूर्ण रह जाता है। अतः ध्वनियों में परिवर्तन आता -जाता है, जिसका शनैः-शनै: समाज में प्रचलन हो जाता है। वन्द्योपाध्याय से बनर्जी, उपाध्याय से 'झा', ओम् नमः सिद्धम्' का 'ओनामासीधम' बनना अनुकरण की अपूर्णता के सूचक है । बच्चों की बोली में अनुकरण की अपूर्णता स्पष्ट दिखाई देती है जैसे रोटी को लोटी, रूपया को लुपया सुना जा सकता है, परन्तु बाद में ये दोष दूर हो जाते हैं। ब्राह्मण का

'ब्राम्हण' आदि अनुकरण की अपूर्णता से हो जाते हैं।

5. **भ्रामक व्युत्पत्तियॉं** - जब व्यक्ति किसी अपरिचित शब्द के संसर्ग में आते हैं तथा इस शब्द से साम्य रखता हुआ कोई शब्द भाषा में पहले से ही होता है तो अपरिचित शब्द के स्थान पर अपनी

भाषा के पूर्ण परिचित शब्द का प्रयोग करने लगते हैं। इस प्रकार ध्वनि परिवर्तन की क्रिया चलने लगती है । जैसे अंग्रेजी शब्द 'लाइब्रेरी' का अशिक्षित व्यक्ति भ्रमवश 'रायबरेली' तथा अरबी शब्द 'इतंकाल'को 'अन्तकाल' कह दिया जाता है। इसी प्रकार 'चार्जशीट' को 'चारसीट' 'क्वार्टर' को 'कातल' या 'काटर' 'गार्ड' को 'गारद' कोर्ट को 'कोरट', 'कार्ड' का 'कारड' जैसे शब्द भ्रमवश प्रयोग किए जाने लगते हैं।

6. **भावुकता-** भावुकता वश या प्रेमवश मनुष्य शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं करते हैं। अतः ध्वनि परिवर्तन होता रहता है। व्यक्तियों के नामों के सम्बन्ध में देखा जाता है कि प्रेम के कारण व्यक्तियों के नाम बिगाड़ कर पुकारा जाता है । जैसे धनीराम का धनुआ, सुखराम का सुक्खा, राजेन्द्र का रज्जो, दुलारी का दुल्ला, बच्चा का बचऊ, बेटी का बिट्टी, बहू का बहुरिया आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

7. **वाग्यन्त्र की विभिन्न**- हर व्यक्ति के वाग्यन्त्र की बनावट पूर्णतः एक जैसी नहीं होती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का ध्वनि उच्चारण भी समान नहीं होता है। वाग्यन्त्र की भिन्नता के कारण ध्वनि उच्चारण में भिन्नता आ जाती है, जैसे कि हर व्यक्ति अब श्, ष, स इन तीन ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर सकता है। संस्कृत की 'स' ध्वनि 'फारसी' में 'ह' बन जाती है। जैसे 'सिन्धु' का 'हिन्दु', सप्त का 'हफ्त' आदि। 'ऋ' ध्वनि का उच्चारण सम्भव नहीं है।

8. **यदृष्छा शब्द-**बोलते समय व्यक्ति अपने आप शब्द बनाकर बोलते हैं, उन्हें यदृच्छा शब्द कहते हैं। कभी-कभी एक शब्द की समानता पर जोडा़ शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है। खान-बाना, रोटी-ओटी, पानी-बानी आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। युग्मक रूप बनाते समय ध्वनि परिवर्तन कर लिया जाता है।

9.**आत्मप्रदर्शन**- आत्मप्रदर्शन के कारण भी व्यक्ति बोलते समय ध्वनि-परिवर्तन कर लेते हैं। जैसे - 'खालिस' (शुद्ध) को निखालिस, (अशुद्ध), इच्छा को इक्षा, 'छात्रा' को 'क्षात्र', क्षत्रिय को छत्रिय, 'सेवक' को 'शेवक' आदि प्रकार से परिवर्तित कर लिया जाता है। इसी प्रकार उपर्युक्त को उपरोक्त तथा अन्तराष्ट्रिय को 'अन्तर्राष्ट्रीय' बनाकर प्रयोग किया जाता है। इन शब्दों का प्रचलन अत्यधिक हो चुका है तथा भाषा में ये रूप स्वीकृत हो चुके हैं।

2.4.3 ध्वनिपरिवर्तन के बाह्य कारण

1.**भौगोलिक प्रभाव-** भौगोलिक प्रभाव के कारण ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। अधिक ठंडे (स्थानों पर व्यक्ति अधिक मुख नहीं खोल सकता है अतः विवृत ध्वनियों का विकास नहीं हो पाता है। गरम देश में इसके विपरीत विवृत ध्वनियों का अधिक विकास होता है। पर्वतों से घिरे क्षेत्र के निवासी बाहरी सम्पर्क में कम आते हैं, अतः उनका मानसिक, सामाजिक, धार्मिक विकास धीमा रहता है, अतः भाषा पर भी इसका प्रभाव पड़ता है तथा परिवर्तन की गति मन्द होती है। पहाडी़ भाग के निवासी यातायात की कमी से थोड़े-थोड़े क्षेत्र से सम्पर्क रखते हैं, अतः भाषा की अनेक बोलियाँ

विकसित हो जाती है, क्योंकि ध्वनि-परिवर्तन थोडी़-थोडी़ दूर के क्षेत्रों में पाया जाता है।

2.**सामाजिक तथा राजनैतिक प्रभाव**- समाज में जब शान्ति, स्थिरता रहती है तो मनुष्यों में विद्या का प्रचार होने से अधिक परिवर्तन नहीं होते हैं, परन्तु बाहरी आक्रमणों से जब समाज में अव्यवस्था व्याप्त हो जाती है, युद्ध का वातावरण रहता है तब भाषा में ध्वनि परिवर्तन अधिक तीव्रता से होते हैं। विदेशी भाषा के प्रभाव से उच्चारण में भिन्नता आ जाती है। मुम्मई अंग्रेजी प्रभाव से बम्बई हो गई, कलिकाता भी कलकत्ता हो गया । राजनैतिक प्रभाव से अनेक नई ध्वनियों का समावेश हो जाता है । राजनैतिक प्रभाव से आर्यभाषाओं में अनके विदेशी ध्वनियाँ आ गई हैं।

3. **लेखन प्रभाव**-लिखने के द्वारा भी ध्वनि परिवर्तन होते रहते हैं। अंग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी के मिश्र, शुक्ल, गुप्त, मित्र, अशोक, राम जैसे शब्द क्रमशः मिश्रा, शुक्ला, गुप्ता, मित्रा, अशोका, रामा आदि के रूप में उच्चरित होते हैं। उर्दू के प्रभाव से राजेन्द्र का राजेन्द्रर, प्रधान का परधान, स्कुल का सकूल उच्चारण किया जाता है । इस तरह लेखन रीति ध्वनि परविर्तन में सहायक होती है।

4. **लघु बनाने की प्रवृत्तियॉं** -अधिक लम्बे शब्दों का उच्चारण व्यक्ति को भारस्वरूप लगता है, अतः बोलचाल में संक्षिप्त करने या लघु रूप में प्रयोग करने की प्रवृत्तियॅां काम करती है। व्यक्ति का अभिप्राय श्रोता द्वारा समझ लिया जाता है। यूनियन ऑफ सोववियत सोशिलिष्ट रिपब्लिक को यू0एस0एस0आर0 या सोवियत रूस कह देते हैं । इसी प्रकार यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका को यू0एस0एस0, पटियाला ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन' को 'पेप्सू' कहते हैं। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक संस्थाओं के नामक का संक्षिप्त रूप प्रयोग किया जाता है जैसे - यूनेस्को। इसी प्रकार शुक्ल दिवस को संक्षिप्त करके 'सुदि' कहते हैं। इस प्रकार लम्बे-लम्बे शब्दों में ध्वनि परिवर्तन करके उनका छोटा रूप प्रयोग किया जाता है।

5. **काल का प्रभाव**- ध्वनि परिवर्तन में काल अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अधिक समय बीतने पर अनेक कारणों से जैसे बदलती राजनीतिक दशा, धार्मिक दशा, सामाजिक दशा के कारण अथवा भाषा के स्वाभाविक विकास के कारण ध्वनियों में परिवर्तन आता जाता हे। लम्बे समय में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हजारों वर्ष पूर्व की वैदिक संस्कृत स्वाभाविक गति से काल-प्रभाव से परिवर्तित होकर आज भारती आर्य भाषाओं की जननी बन चुकी है, इसी प्रकार लैटिन, ग्रीक आदि प्राचीन भाषाओं से ध्वनि परिवर्तन होकर आधुनिक यूरोपीय भाषाओं का विकास हुआ है।

6. **सादृश्य** -सादृश्य के कारण भी ध्वनि परिवर्तन होते हैं। किसी एक ध्वनि के सादृश्य पर दूसरीध्वनि का प्रयोग किया जाने लगता है। द्वादश के सादृश्य पर 'एकदश' की 'एकादश' बन गया है। स्वर्ग की समानता पर नरक का 'नर्क' प्रयोग किया जाने लगा है। इसी प्रकार देहाती की समानता पर 'शहराती' शब्द बना लिया गया है।

7. **कलात्मक स्वच्छन्दता**- कवियों द्वारा मात्रा अथवा तुक मिलाने के लिए या श्रुति माधुर्य के

लिए ध्वनियों में परिवर्तन कर दिया जाता है। संसार के स्थान पर जहाना- (जैसे - जे जड़ चेतना जीवन जहाना), बैठाया के स्थान पर बैठाई (जैसे - आसिस देइ निकट बैठाई), नदिया (नदी), हथ्यार (हथियार), बिकरार (विकराल), चंका (चक्का), बादर (बादल), कारे (काले), काजर (काजल) आदि प्रयोग भी मिलते हैं। अनेक स्थानों पर 'ण' अपेक्षा 'न' का प्रयोग किया गया है। जैसे - कन (कण), वीणा (वीना), किरन (किरण) आदि। इस प्रकार तुक मिलाने, लय या मधुरता लाले के लिए ध्वनियों में परिवर्तन होते रहते हैं।

8. **लिपि की अपूर्णता**-

किसी एक लिपि से विश्व की सब ध्वनियों को प्रकट नहीं किया जा सकता है। क्योंकि देखा जाता है कि 'विश्व में कोई भी दो भाषाएँ पूर्ण रूप से एक ही प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग नहीं करती है। अतः किसी एक भाषा के लिए पर्याप्त सिद्ध होने वाली लिपि किसी अन्य भाषा के लिए अपर्याप्त सिद्ध होती है। एक भाषा के शब्द दूसरी लिपि में अशुद्ध प्रयोग किए जाने लगते हैं। तमिल भाषा में देवनागरी के वर्गो के पहले तथा पाँचवें वर्ण सूचक चिह्न मिलते हैं। प्रथम वर्ण शेष 3 वर्णों का भी बोध कराता है। अंग्रेजी शब्दों में रोमन लिपि की कमी (अपूर्णता) स्पष्ट प्रतीत होती है। 'व्' (ओ) ध्वनि कही 'अ', कहीं 'आ' तो कहीं 'ओ' को बताती है, जैसे मदर (mother) में 'अ', ऑवर (our) में 'आ', मोर (more) में 'ओ' की तरह आई है। इसी प्रकार (|) ए ध्वनि भी बदलती रहती है। म् (ई) ध्वनि भी कहीं 'इ' कहीं 'ए' तो कहीं 'अ' की तरह आती है। जैसे mere (मियर) में 'इ', henमें 'ए', mother(मदर) में 'अ' की भाँति आई है। इसी प्रकार अन्य उदारण देखे जा सकते हैं। देवनागरी की अनेक ध्वनियाँ जैसे ण, ड़, ङ्, श, ष, रोमन में नहीं हैं। हिन्दी में भी टंकण में चन्द्र बिन्दु (ँ) के स्थान पर (ं) अनुस्वार का प्रचलन हो गया है। उर्दू लिपि तथा गुरूमुखी में स्कूल को सकूल, प्रधान को परधान, प्रेम को परेम, रजेन्द्र को राजेन्द्र जैसे रूपों में लिखा तथा पढा़ जाता है। इस प्रकार लिपि को अपूर्णता का ध्वनि परिवर्तन में प्रभाव पड़ता है।

9. **बलाघात सुर या मात्रा**

बलाघात से ध्वनि परिवर्तन हो जाते हैं। बलाघात युक्त ध्वनि सबल होकर समीपवर्ती ध्वनियों को निर्बल कर देती है। बाद में निर्बल ध्वनियाँ लुप्त हो जाती है। जैसे 'अभ्यन्तर' से 'भीतर', उपाध्याय से ओझा हो गया। सुर के प्रभाव से ध्वनि परिवर्तन हो जाता है, जैसे कुष्ठ का कोढ़, बिल्व का बेल। दो दीर्घ स्वर आने पर एक स्वर हस्व हो जाता है। जैसे नारायण का नरायण, आकाश का अकास

आदि। इस प्रकार बलाघात, सुर आदि के कारण ध्वनि परिवर्तन हो जाते हैं।

10. **विदेशी ध्वनियों का प्रभाव**- विदेशी ध्वनियों के प्रभाव से भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। यही कारण है कि भारतीय भाषाओं में भी अरबी, फारसी आदि भाषाओं की ध्वनियाँ परिलक्षित होती है।

2.4.4 ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ

ध्वनि-परिवर्तन को दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया गया है - (1) बाह्य और (2) आन्तरिक। बाह्य प्रभावों के द्वारा हुए परिवर्तन को बाह्य परिवर्तन की संज्ञा दी गई है तथा जो परिर्वतन बाह्य कारण की अपेक्षा न रखते हुए स्वयं ही हो जाते हैं, उन्हें आंतरिक कारण कहा गया है। संस्कृत के वैयाकरणों ने भी ध्वनि परिवर्तन प्रक्रिया को स्वीकार किया है। उनके विचार से ध्वनि या वर्ण परिवर्तन के कारण वर्णव्यत्यय, वर्णापाय, वर्णोजन एव वर्णविकार हैं-

वर्णव्यत्ययापायोपजनविकारेषु ।वर्णव्यत्यये कृतेस्तर्कः कसेः सिकता, हिंसेः सिंहः ।अपायो लोपः घ्नन्ति, घ्नन्तु, अघ्नन् । उपजन - आगमः, लविता, लवितुम् । विकारः आदेशः घातयति, घातकः ।

अर्थात् महाभाष्यकार पतञ्जलि ने वर्णव्यत्यय के उदाहरण कृत से तर्क, कस से सिकता, हिंसा से सिहः, लोप के उदाहरण घ्नन्ति,, घ्नन्तु और अघ्नन्। आगम के उदाहरण - लविता, लवितुम्, आदेश के उदाहरण - घातयति, घातकः दिए हैं। काशिकाकार ने भी '**वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ' वर्णविकारनाशौ -** लिखकर वर्णपरिवर्तन के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है। आधुनिक भाषाविज्ञानविशारदों के विचार से सामान्यतः ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ इस प्रकार हैं।

2.4.5 लोप अभिनिधान -

कभी-कभी ध्वनियों के उच्चारण करते समय प्रयत्नलाघव, मुख-सुख या स्वराघात के कारण कुछ ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं । यह लोप स्वर, व्यञ्जन तथा अक्षर से सम्बन्धित होने से तीन प्रकार का माना गया है-

1. स्वरलोप

2. व्यञ्जन

3. अक्षरलोप ।

उपर्युक्त तीनों के आदि, मध्य और अन्त ये तीन भेद किए गए हैं

स्वरलोप-शब्दों में दो व्यञ्जनों के मध्य में आने वाले स्वर का प्रायः लोप हो जाता है।

जैसे - राजन् उदात्त अस् = राज्ञः।

आदि स्वर लोप - अपूप = पूप, अनाज = नाज, आभ्यन्तर = भीतर।

मध्य स्वर लोप - अरथी = अर्थी बरतन = बर्तन

गलती = गलती DoNot= Dont

अन्त्य स्वर लोप -इसके कारण शब्द प्रायः व्यञ्जनान्त हो गए हैं। लेकिन लिखने में अभी इनका प्रयोग नहीं किया जाता है।

परीक्षा	=	परख (परख्)।	बाहु	=	बाँह (बाँह्)
आम्र	=	आम (आम्)।	भगिनी	=	बहन (बहन्)
दूर्वा	=	दूब (दब्)।	वार्ता	=	बात (बात्)

व्यञ्जन लोप- इसके भी तीन प्रकार बताए गए हैं-

1. आदि व्यञ्जन लोप,
2. मध्य व्यञ्जन लोप और
3. अन्त्य व्यञ्जन लोप।

1. आदि व्यञ्जन लोप- उच्चारण की कठिनाई के कारण अंग्रेजी आदि भाषाओं में आदि व्यञ्जन का लोप हो जाता है। जैसे-

Write .	Rite	प्रिय -पिय (हिन्दी)
Know .	Now	श्मशान - मसान (हिन्दी)
Knight.	Night	स्थाली - थाली (हिन्दी)
Knife .	Nife	स्थान - थान (हिन्दी)

2. **मध्य व्यञ्जन लोप -** संस्कृत शब्दों के मध्य में आने वाले क, ग, च, ज, त, द, न, प, फ, य, र, ल, व, ष तथा विसर्ग (:) का प्रयाः हिन्दी में लोप हो जाता है-

श्रृगाल = सियार	पिप्पल = पीपल
कुक्कुर = कूकर	शय्या = सेज
सूची = सूई	उत्पत्तियॉ = उपज
उष्ट्र = ऊँट	अर्द्ध = आधा
कोकिल = कोईल	फाल्गुन = फागुन
लज्जा = लाज	दुःख = दुख
दुग्ध = दूध	

प्राकृत भाषा में इसके बहुत से उदाहरण मिलते हैं-

सागर = साअरो

भोजन = भोअण

प्रिय = पिय

हिन्दी की बोलियों में भी इस तरह की प्रवृत्तियॉं दिखाई देती है-

ज्वार = जर	ब्राह्मण = ब्राम्हन
बुद्ध = बुध	कार्तिक = कातिक
कायस्थ = कायथ	उपवास = उपास

इसी तरह अंग्रजी में तो उच्चारण का लोप हो गया है, लेकिन लिखित रूप में अभी मौजूद हैं-

Talk	टॉक
Right	राइट
Walk	वॉक
Daughter	डॉटर

3. **अन्त्य व्यञ्जन लोप-**

सत्य = सत (सच)	पश्चात् = पश्चा (प्राकृत)
चरित्र = चरित (चरित्)	यावत् = जब
कुंकुम = कुम्मो	निम्ब = नीम
आम्र = आम	

अक्षर लोप - इसके चार भेद किए गए हैं-

1. आदि अक्षर लोप
2. मध्य अक्षर लोप
3. अन्त्य अक्षर लोप
4. समाक्षर लोप

1. **आदि अक्षर लोप** (Apheresis)

University	.	Versity	त्रिशूल	- शूल
Defence	.	Fence	अध्यापक	- झा
Necktie	.	Tie	व्याकुल	- आकुल

2. **मध्य अक्षर लोप**

वरूजीवी	-	बरई	गोधूमचणा	-	गिहुँचना
भण्डागार	-	भण्डार	गेहूँ जब	-	गोजई
राज्यकुल	-	राउर	दस्तखत	-	दस्खत

3. **अन्त्य अक्षर लोप**

मौक्तिक	-	मोती,	दीपवर्तिका	- दीवट
माता	-	माँ,	यज्ञोपवीत	- जनेऊ

निम्बुक - नींबू, जीव - जी
भ्रातृजाया - भावज, सपाद - सवा

3- समाक्षर लोप- (Haplology) किसी एक ही शब्द में अक्षर या अक्षर समूह साथ-साथ दो बार प्रयुक्त किए जाते हैं तो उच्चारण की सुविधा के कारण उनमें से एक का लोप हो जाता है, तब उसे समाक्षर लोप कहा जाता है।

जैसे- शष्पपिञ्जर - शष्पिञ्जर
खरीददार - खरीदार
नाककटा - नकटा
Part–time - Partime

कभी-कभी ध्वनि या अक्षर पूर्णतः एक ही न होकर उच्चारण में मिलते - जुलते है, तब भी एक का लोप हो जाता है-

कुष्णनगर - कृष्णनगर

इनके भी तीन उपभेद किए गये हैं।

1. समव्यञ्जन लोप
2. समस्वर लोप और
3. समाक्षर लोप

2.4.6 आगम- प्रागुपजन

उच्चारण करते समय कभी-कभी मुख-सुख के लिए कुछ व्यञ्जनों, विशेषतया संयुक्त व्यञ्जनों के आदि, मध्य तथा अन्त में स्वरों तथा व्यञ्जनों का आगम हो जाता है। प्रारम्भ में आने वाले स्वर को प्रागुपजन कहा गया है। इसमें शब्द के प्रारम्भ में कोई स्वर प्रयुक्त हो जाता है

जैसे - स्तुति - इस्तुति
स्नान - अस्नान
स्कूल - इस्कूल

मध्य स्वरागम- अज्ञानता अथवा बोलने की सुविधा के लिए कभी-कभी मध्य में अन्तर का प्रयोग किया जाता है-

कर्म - करता ब्रह्म- बरहमा (बरमा)
प्रकार - परकार बक - बगुला
मर्म - मरम मिश्र - मिसुर
प्रसाद - परसाद भ्रम - भरम

अन्त्य स्वरागम-

गल	-	गला
स्वप्न	-	सपना
दवा	-	दवाई
निपुणता	-	निपुनाई (निपुनाई)
हरीतिमा	-	हरियाई
चतुरता	-	चतुराई

व्यञ्जनागम

आदि व्यञ्जनागम-

अस्थि	-	हड्डी
ओष्ठ	-	होठ
उल्लास	-	हुलास

मध्य व्यञ्जनागम-

शाप	-	श्राप	वानर	-	बन्दर
समुद्र	-	समुन्दर	लाश	-	लहास
सुख	-	सुक्ख	Panel	.	Pannel

अन्त्य व्यञ्जनागम-

चील	- चील्ह	परवा	- परवाह
रंग	- रंगत (अरबी)	देह	- देहार (फारसी)
भोंह	- भौंह	Cautio	- Caution(अंग्रेजी)

अक्षरागम

आदि अक्षरागम-

स्फोट - विस्फोट

गुञ्जा - घुंघुची

मध्य अक्षरागम-

खल	-	खरल
आलस	-	आलकस

गरीबनिवाज - गरीबुलनिवास

अन्त्य अक्षरागम- ढफ - ढफली

तावे - तावेदार

वधू - वधूटि

2.4.7 स्वरभक्ति या विप्रकर्ष-

संयुक्त व्यञ्जनों के उच्चारण में होने वाली असुविधा को समाप्त करने के लिए उनके बीच में स्वर के आगम को स्वरभक्ति या विप्रकर्ष कहा गया है। यथा-

युक्ति - युगति (जुगति)

पंक्ति - पंगति

भक्ति - भगति

अपिनिहित-समस्वरागम -आदिस्वर तथा अपिनिहित में विद्वानों ने कुछ अन्तर दर्शाये हैं-

1. आदि स्वरागम में कोई भी स्वर आ सकता है लेकिन अपिनिहित में केवल उसी स्वर का आगम होता है जो या तो पहले से विद्यमान को अथवा उसी प्रकृति का हो।

2. आदि स्वरागम में आने वाला स्वर हमेश आदि में प्रयुक्त होता है जबकि अपिनिहित में ऐसा कोई बन्धन नहीं है ।

2.4.8 समीकरण

समीप स्थित दो वर्ण जब परस्पर प्रभावित होकर वर्णों में से एक रूप परिवर्तित कर दूसरे को स्वरूप ग्रहण करता है तो उसे समीकरण कहते हैं। संस्कृत के वैयाकरणों ने इसे सवर्णीकरण नाम से पुकारा है। इसके दो भेद किए गये हैं-

1. पुरोगामी और
2. पश्चगामी

स्वर तथा व्यञ्जन के आधार पर इनके उदाहरणों को प्रस्तुत किया जा रहा है-

1- **पुरोगामी**

दूरवर्ती - विलपना = विलबना

पार्श्ववर्ती - पद्म = पद्द,

चक्र = चक्क,

वक्र = वक्क।

2- **पश्चगामी**

दूरवर्ती - नीला = लीला, नील = लील।

पार्श्ववती - धर्म = धम्म, कर्म = कम्म,

सर्प = सप्प।

स्वर-

1. **पुरोगामी**

दूरवर्ती - जुल्म = जुलुम।

पार्श्ववती – आइए = आइइ।

2. **पश्चगामी**

दूरवर्ती - असूया = उसूया।

2.4.9 विषमीकरण

यह समीकरण का उल्टा है। इसमें दो समान समीपस्थ ध्वनियों में एक ध्वनि अपने स्वरूप का परित्याग कर विषम या असम बन जाती है, तब इसे विषमीकरण कहा जाता है। जब पहला वर्ण तो ज्यों का त्यों स्थित रहता है, परन्तु दूसरे में परिवर्तन हो जाता है तो उसे 'पुरोगामी विषमीकरण' कहा जाता है।

जैसे - काक = काग,

कंकण = कंगन,।

लांगूल = लंगूर।

पश्चगामी विषमीकरण में प्रथम वर्ण में परिवर्तन होता है।

जैसे - नूपुन = नेउर,

मुकुट = मउर (मौर),

मुकुल = मउल।

2.4.10 विपर्यय

कभी-कभी शीघ्रतापूर्वक उच्चारण करते समय शब्द की ध्वनियों का स्थान परिवर्तित हो जाता है। ध्वनियों के स्थान पर परिवर्तन को विपर्यय कहते हैं। विपर्यय कई प्रकार का होता है-

स्वर- विपर्यय, व्यञ्जन विपर्यय तथा अक्षर विपर्यय। समीप की ध्वनियों के परिवर्तन को पार्श्ववर्ती विपर्यय तथा दूसरवर्ती ध्वनियों के परिवर्तन को दूरवर्ती विपर्यय कहते हैं।

स्वरविपर्यय

(क) पार्श्ववर्ती स्वर विपर्यय- फा0 में जानवर का हिन्दी में जानवर, अंगुली को उंगुल इंडो (अफ्रीकी भाषा में) स्पम = स्मप (बनाना) आदि।

(ख) दूरवर्ती स्वर विपर्यय - अनुमान = उनमान,

पागल, = पगला,

खट्टा = खाट आदि।

व्यञ्जन विपर्यय

(क) पार्श्ववर्ती विपर्यय- चिह्न = चिन्ह,

ब्रह्म = बम्ह,

हनान = नहान,

डूबना = बूड़ना,

डेस्क = डेक्स आदि

(ख) दूरवर्ती स्वर विपर्यय - तमगा = तगमा,

अमरूद = अरमूद,

सिगनल = सिंगल आदि।

अक्षर विपर्यय

(क) पार्श्ववर्ती विपर्यय- अरबी - मतलब = मतबल,

अचरज(अरबी) = (उर्दू) अरजक (नीला),

खन = नख आदि।

(ख) दूरवर्ती स्वर विपर्यय - लखनऊ - नखलऊ आदि।

आद्य शब्दांश - विपर्यय (SPOONERISM)- जब दो शब्दों के प्रारम्भ के अक्षरों में विपर्यय हो जाता है तो उसे आद्य शब्दांश - विपर्यय कहते हैं। आक्सफोर्ड के विद्वान् डा0. डब्लयू0 ए0 स्पूनर के नाम से इसे 'स्पूनरिज्म (Spoonerism) कहते हैं क्योंकि उन्हें इस प्रकार के विपर्यय बोलने की लत भी।

उन्हीं के द्वारा प्रयुक्त कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं- एक बार कुल से उन्होंने 'दो थैले तथा एक कम्बल (Two bags and a rug) ले जाने के स्थान पर 'दो चिथले तथा एक खटमल' (Two Rags and a gug) ले जाने को कह दिया।

इसी प्रकार उन्होंने एक विद्यार्थी को डाँटते समय कहा कि –You have tasted a whole worm जबकि कहना चाहते थे You have wated a whole teme

इस प्रकार विपर्यय होना उनकी आदत में था। हिन्दी में ऐसे उदाहरण - 'चावल-दावल' (दाल चावल), नेन तूल (नून तेल) जैसे बनाए जा सकते हैं।

2.4.11 अभिश्रुति (Umlaut)

स्वरों तथा व्यञ्जनों से प्रभावित होकर आदि अपिनिहित के कारण प्रयुक्त हुआ स्वर परिवर्तित हो जाता है तो उसे अभिश्रुति कहा जाता है-

Mani = Maini = Men

अपश्रुति (Ablaut)- जब किसी शब्द में व्यञ्जनों के यथावत् रहते हुए भी केवल स्वर

परिवर्तन से रूप तथा अर्थ में अन्तर हो जाय तथा अनेक रूप निर्मित हो जायँ तो उसे अपश्रुति कहा जाता है। जैसे-

एकवचन	**बहुवचन**
अंग्रजी - फुट (पैर)	फीट (पैर)
अरबी - किताब (पुस्तक)	कुतुब (पुस्तकें)
संस्कृत - अस्ति (है)	सन्ति (है)
पुँलिंग	**स्त्रीलिंग**
कृष्ण	कृष्णा
राम	रमा

अपश्रुति के अन्तर्गत ही भारतीय वैयाकरणों द्वारा बताए गए गुण, वृद्धि और सम्प्रसारण भी आ जाते हैं। सम्प्रसारण में य्, व्, र् ल्, क्रमशः इ, उ, ऋ, लृ, में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे-

ग्रभे = गृभे, श्वन = शुनः,

वक्तवे = उक्त, चत्वारः = चतुरः।

2.4.12 सादृश्य या मिथ्यासादृश्य (Analogy or false analogy)

समानता के कारण भी ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती है। जब कुछ शब्दों में दूसरों के सादृश्य से ध्वनि परिवर्तन होता है तो इसे सादृश्य या मिथ्यासादृश्य कहा जाता है। इसे औपम्य या उपमान भी कहा जता है। जैसे - 'सर्प' शब्द नरक के सादृश्य से सरप । डाक्टर भोलानाथ तिवारी के शब्दों में 'संस्कृत में द्वादश के सादृश्य पर एकदश भी एकादश हो गया है।

2.4.13 अनुनासिकता-

अनुनासिकता के कारण भी ध्वनियाँ परिवर्तित हो जाती है । इस परिवर्तन प्रकार में मुख-सुख ही प्रमुख कारण है। जैसे-

सत्य = साँच,

वक्र = बाँका,

सर्प = साँप,

कूप = कुआँ।

ऊष्मीकरण- कभी-कभी ध्वनियाँ ऊष्म ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं। इसे ही ऊष्मीकरण कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप केन्टृम् वर्ग की भाषाओं की 'क' ध्वनि' 'शतम्' वर्ग में ऊष्मीकरण को प्राप्त हो गयी है।

सन्धि - संस्कृत भाषा में सन्धियों का महत्पूर्ण स्थान है। सन्धियों के नियम स्वर और व्यञ्जन दोनो के लिए है। संस्कृत के अलावा दूसरी भाषाओं में सन्धियों के नियमों का प्रयोग हुआ है। कभी-कभी तो सन्धियों के माध्यम से इतना परिवर्तन हो जाता हैः कि सम्पूर्ण ध्वनियों का समझना ही कठिन हो जाता है।

जैसे-

तद् + श्लोकेन = तच्छलोकेन,

वाक् + हरिः = वाग्घरिः

हिन्दी- नयन = नइन = नैन।

सपत्नी = सवत = सौत।

घोषीकरण - जब अघोष ध्वनियाँ, घोष ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती है, तो उसे घोषीकरण कहा जाता है। जैसे-

मकर = मगर, सकल = सगल, काक = काग।

अघोषीकरण - इसमें सघोष ध्वनि अघोष के रूप में परिवर्तित हो जाती है, अतः इसे 'अघोषीकरण' कहा जाता है। जैसे-

नगर = नकर, अदद = अदत।

महाप्राणीकरण- अल्पप्राण ध्वनियाँ जब महाप्राण में परिवर्तित हो जाती हैं, तो उसे 'महाप्राणीकरण कहा जाता है । जैसे-

वाष्प = भाप, गृह = घर हस्त =हाथ ।

अल्पप्राणीकरण - जब महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण में बदल जाती है तो उसे अल्पप्राणीकरण कहा जाता हैं। जैसे-

धधामि = दधामि, सिन्धु = हिन्दू।

मात्राभेद- उच्चारण में कभी दीर्घ को ह्रस्व और कभी ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है। जैसे-

अक्षत = आखत, हस्त = हाथ सत्य = साँच।

नासिका - नासिका विवर प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। यह श्वास प्रश्वास वायु का मुख्य स्थान व साधन है। अनुनासिक वर्णों का उच्चारण नासिका विवर की सहायता से किया जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ध्वनियों के उच्चारण में शरीरावयवों का महत्व पूर्ण स्थान है। इनके विकृत हो जाने से ध्वनियों का उच्चारण करना सम्भव नहीं है।

2.5 सारांश

इस इकाई में पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं-

1. ध्वनियॉं में परिवर्तन होता रहता है।

2. इस ध्वनि परिवर्तन को भाषा विज्ञानी विकार अथवा विकास कहते हैं।

3. कभी-कभी ध्वनियों में परिवर्तन होते-होते कुछ ध्वनियों का प्रयोग कम हो जाता है।

4. परिवर्तन होते-होते शनै-शनै कुछ ध्वनियाँ लुप्त हो जाती है और कुछ नवीन ध्वनियों का समावेश हो जाता है।

5. इस ध्वनि परिवर्तन के अनेक कारण हैं। इनमें आभ्यन्तर और बाह्य कारण प्रमुख ध्वनियों का समावेश हो जाता है।

6. आभ्यन्तर कारणों में प्रयत्न राघव, बोलने में शीघ्रता, अशिक्षा, अज्ञान, अनुकरण की अपूर्णता आदि मुख्य कारण है।

7. बाह्य कारण में भौगोलिक प्रभाव, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रभाव, लेखन प्रभाव, संक्षिप्त बनाने की प्रवृत्तियॉं आदि मुख्य कारण हैं।

8. यहाँ आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के कारणों पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है ।

9. ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं का विवेचन किया गया है।

10. ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं में स्वर -लोप, व्यञ्जन लोप, अक्षरलोप आदि आते हैं। यहाँ इनका सम्यक् विश्लेषण किया गया है।

11. ध्वनि परिवर्तन के आभ्यन्तर और बाह्य कारणों तथा ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं के विषय में प्रकाश डालकर यथा स्थान उनके उदाहरण दिये गये हैं।

2.6 शब्दावली

आभ्यन्तर करण - ध्वनि परिवर्तन में जो आन्तरिक कारण होते हैं, उन्हें आभ्यन्तर कारण कहते हैं।

प्रयत्नलाघव--मनुष्य शब्द के उच्चारण में प्रयत्न करता है। अधिक श्रम से बचने का प्रयत्न करता है। जब किसी शब्द के उच्चारण में उसे कठिनाई होती है। तब वह अपनी सुविधा के लिए उसका उच्चारण अपने ढंग से कर देता है। इसे प्रयत्नलाघव कहते हैं। जैसे - इन्द्र को इन्दर।

यदृच्छा - कभी-कभी व्यक्ति बोलते समय अपने आप शब्द बनाकर बोलते हैं, उन्हें यदृच्छा शब्द कहते हैं। जैसे - पट - पटा करोति। हिन्दी में कभी -कभी एक शब्द की समानता पर जोडा़ शब्दों का निर्माण कर बोल देते हैं। जैसे खाना-बाना, रोटी-ओटी, पानी-बानी इत्यादि।

सादृश्य- सादृश्यता के कारण भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। जैसे - द्वादश के सादृश्य पर एक- दश भी एकादश बन गया है।

बलाघात- बलाघात से ध्वनिपरिवर्तन हो जाता है। बलाघात युक्त ध्वनि सबल होकर समीपवर्ती ध्वनियॉं को निर्बल कर देती है और बाद में ध्वनियाँ लुप्त हो जाती हैं।

जैसे - आकाश का अकाश।

वर्णव्यत्यय - वर्णोंक में व्यत्यय अर्थात् उलट फेर से परिवर्तन हो जाता है। जैसे - कृत से तर्क, हिंस से सिंह।

वर्णापाय- वर्ण के अपाय अर्थात् लोप हो जाने से परिवर्तन हो जाता है। जैसे - हन् धातु से लट् लकार के प्रथम पुरूष, बहुवचन में ध्नन्ति बन जाता हैं

वर्णागम -वर्ण के आगम से भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे - बभूव में भू धातु से वुक् का आगम होता है।

वर्णविकार-वर्ण के विकार से भी परिवर्तन हो जाता है।

जैसे - हन् धातु से धातक।

लोप अभिनिधान-कभी-कभी ध्वनियों के उच्चारण करते समय प्रयत्नलाघव, मुखसुख या स्वराघात के कारण कुछ ध्वनियाँ लुप्त हो जाती है। इसे लोप अभिनिधान कहते हैं।

जैसे - राजन् उदात्त ङस् = राज्ञः।

आगम प्रागुपजन- उच्चारण करते हुए कभी-कभी मुखसुख के लिए प्रयुक्त कुछ व्यजनों - मुख्य रूप से संयुक्त व्यजनों के आदि, मध्य और अन्त में स्वरों तथा व्यजनों का आगम हो जाता है। इसे आगम प्रागुपजन कहते हैं-

जैसे - स्तुति - इस्तुति।कर्म – करम ।

स्वरभक्ति या विप्रकर्ष-संयुक्त अक्षरों के उच्चारण में होने वाली असुविधा के दूर करने के लिए उनके बीच में स्वर आगम को स्वरभक्ति कहते हैं। जैसे - भक्ति - भगति।

समीकरण -समीप स्थित दो वर्ण जब परस्मपर प्रभावित होकर एक वर्ण अपने रूप को परिवर्तित कर दूसरे का स्वरूप ग्रहण कर लेता है तो उसे समीकरण कहते हैं। संस्कृत के वैयाकारण इसे सवर्णीकरण कहते हैं।

जैसे - चक्र - चक्क।

विषमीकरण -यह समीकरण का उल्टा है। इसमें दो समान समीपस्थ ध्वनियों में एक ध्वनि अपने स्वरूप का परित्याग कर विषम या असम बन जाती है तब इसे विषमीकरण कहते हैं।

जैसे - मुकुट – मउर ।

आद्य शब्दांश विपर्यय- जब दो शब्दों के प्रारम्भ के अक्षरों में विपर्यय हो जाता है तो उसे आद्य शब्दांश विपर्यय कहते हैं। जैसे - हिन्दी में चावल -दाल को दाल - चावल कह देते हैं।

अभिश्रुति- स्वरों तथा व्यञ्जनों से प्रभावित होकर यदि अपिनिहित के कारण प्रयुक्त हुआ स्वर परिवर्तित हो जाता है तो उसे अभिश्रुति कहते हैं।

अपश्रुति- जब किसी शब्द में व्यञ्जनों के यथावत् रहते हुए भी कवेल स्वर परिवर्तन से रूप तथ अर्थ में अन्तर हो जाये तो उसे अपश्रुति कहते हैं। जैसे - अस्ति- सन्ति।

घोषीकरण- जब अघोष ध्वनियाँ घोष ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं तो इसे घोषीकरण कहते हैं।

अघोषीकरण- जब सघोष ध्वनि अघोष रूप में परिवर्तित हो जाती हैं तो उसे अघोषीकरण कहते हैं।

महाप्राणीकरण -जब अल्पप्राण ध्वनियाँ महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उसे महाप्राणीकरण कहते हैं।

2.7 अभ्यास प्रश्न एवं उनके उतर

प्रश्न 1 - भाषा विज्ञानी ध्वनि परिवर्तन को कहते हैं।

(क) व्याकरण (ख) निरूक्त

(ग) विकास या विकार (घ) आगम

उत्तर (ग) विकास या विकार।

प्रश्न 2 - विस्फोट में है-

(क) स्वरागम (ख) अक्षरागम

(ग) विपर्यय (घ) सन्धि

उत्तर (ख) अक्षरागम ।

प्रश्न 3 - सादृश्य के द्वारा होता है

(क) विपर्यय (ख) ध्वनि-परिवर्तन

(ग) सन्धि (घ) आगम

उत्तर (ख) ध्वनि- परिवर्तन।

प्रश्न 4 - बभूव में है-

(क) वर्णागम (ख) वर्णापाय

(ग) वर्ण व्यत्यय (घ) बलाघात

उत्तर (क) वर्णागम।

प्रश्न 5 - घातक में है-

(क) बलाघात (ख) वर्ण व्यत्यय

(ग) वर्ण-विकार (घ) वर्णापाय

उत्तर (ग) वर्ण विकार

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।
2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।
3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।
4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।
5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।
6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।
7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

(क)

1. ध्वनि परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

2. ध्वनि परिवर्तन के आभ्यन्तर कारणों को बतलाइए।

3. ध्वनि परिवर्तन के बाह्य कारणों पर प्रकाश डालिए।

4. ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं पर प्रकाश डालिए।

(ख) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1. लोप अभिनिधान
2. समाक्षर लोप
3. आगम प्रागुपजन
4. स्वरभक्ति या विप्रकर्ष
5. समीकरण
6. विषमीकरण
7. विपर्यय
8. अभिश्रुति
9. अपश्रुति
10. सादृश्य

इकाई 3. ध्वनि नियम - ग्रिम, ग्रासमन, वर्नर

3.1 प्रस्तावना

भाषा विज्ञान में ध्वनि नियम का महत्व पूर्ण स्थान है। यह ध्वनि-नियम किसी भाषा विशेष का होता है। ध्वनि नियम सर्वथा अपवाद रहित नहीं होते।

प्रस्तुत इकाई में ग्रिम, ग्रासमन और वर्नर के ध्वनि नियमों का अनुशीलन किया गया है। इनमें ग्रिम, नियम का विशेष महत्व है। जर्मन भाषा के प्रकांड विद्वान् और सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक, आचार्य ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, उसे ग्रिम नियम कहते हैं। ग्रिम नियम का सम्बन्ध नौ स्पर्श ध्वनियों से है। इसे जर्मन भाषा का वर्णन परिवर्तन कहते हैं। यह वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है। इसके प्रश्चात् अपवाद स्वरूप कहते हैं। यह वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है। इसके पश्चात् अपवाद स्वरूप, ग्रासमन और वर्नर के ध्वनि नियम आते हैं।

इस इकाई में ग्रिम, ग्रासमन और वर्नर के ध्वनि नियमों के सम्बन्ध में सम्यक् प्रकाश डाला गया हैं। जिससे आप इसके ध्वनि-नियामें के सम्बन्ध में विधिवत् समझ सकेंगे और इस विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप-

- ध्वनि नियम के सम्बन्ध में जानकारी पा सकेंगे।
- ध्वनि नियम ध्वनियों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण नियम हैं।
- ग्रिम, ग्रासमन और वर्नर ध्वनि नियम पर अध्ययन करने वाले प्रमुख आचार्य हैं, यह जान पायेंगे।
- ग्रिम, ग्रासमन और वर्नर ने ध्वनि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया है, यह जानकारी पा सकेंगे।
- ग्रिम नियम का सम्बन्ध नौ स्पर्श ध्वनियों से है, इसकी जानकारी कर सकेंगे।
- ध्वनि नियमों में ग्रिम नियम अनेक मौलिक विशेषताओं को रखता है, यह ज्ञान कर सकेंगे।
- अपवाद रूप ग्रासमन और वर्नर के ध्वनि नियामें का ज्ञान कर सकेंगे।
- ग्रिम नियम जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन है, इसे समझ सकेंगे।
- जर्मन भाषा का यह वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है, इसकी जानकरी पा सकेंगे।
- ग्रिम महोदय के द्वार यह वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है, इसको सोदाहरण समझ सकेंगे।

3.3 ध्वनिनियम - (ग्रिम, ग्रासमन, वर्नर) का अर्थ एवं स्वरूप

ध्वनिनियम ध्वनियों से सम्बन्धित नियम हैं। ध्वनिनियम किसी भाषा विशेष का होता है। यह संसार की समस्त भाषाओं पर लागू नहीं होता। ध्वनिनियम निश्चित सीमा में ही रहते हैं। ये सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं होते हैं। ये ध्वनिनियम सर्वथा अपवाद रहित नहीं होते हैं। जर्मन भाषा के प्रकाण्ड विद्वान सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक आचार्य ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, इसका नाम ग्रिमनियम है। ग्रिमनियम का सम्बन्ध नौ स्पर्श ध्वनियों से है।

इसे जर्मन भाषा का वर्णपरिवर्तन कहते हैं। यह वर्णपरिवर्तन दो बार हुआ है। ग्रिमनियम के सूक्ष्म परीक्षण करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि इसमें अनेक अपवाद हैं। उन अपवादों की समीक्षा ग्रासमन ने की है। अतएव उसे ग्रासमन नियम कहते हैं। ग्रासमन के संशोधन के बाद भी ग्रिमनियम में कुछ अपवाद रह गये थे, जिनपर वर्नर ने विचार किया है। अतएव उसे वर्नर का नियम कहते हैं।

3.4 ध्वनिनियम - ग्रिम, ग्रासमन, वर्नर

3.4.1 ध्वनि नियम

''आचार्य टकर के अनुसार - ''किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट काल और विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन को उस भाषा का ध्वनि नियम कहते हैं''

A phonetic law of a language is a statement of the regular practice of that language at a particular time in regard to the treatment of a particular sound or group of sounds in a particular setting.

इस परिभाषा में निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश डाला गया है-

1. ध्वनिनियम किसी भाषा विशेष का होता है। एक ध्वनिनियम संसार की समस्त भाषाओं पर लागू नहीं होता है।
2. यह नियम एक भाषा की समस्त ध्वनियों पर लागू न होकर कुछ विशिष्ट ध्वनियों पर लागू होता है।
3. ध्वनिनियम सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नहीं होते हैं। वे निश्चित सीमा में ही सीमित रहते हैं।
4. ध्वनिनियमों के लिए विशिष्ट अवस्था और परिस्थिति की अपेक्षा रहती है।
5. ध्वनिनियम सर्वथा अपवाद रहित नहीं होते है ।

3.4.2 ग्रिम-नियम

जर्मन भाषा के अप्रतिम पण्डित एवं प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक आचार्य ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, उस नियम को ग्रिम -नियम के नाम से पुकारा जाता है। यद्यपि इस नियम के प्रथम विचारक इहरे और रेस्क थे। किन्तु इसकी स्मयक् विवेचना ग्रिम महोदय ने की। अतएव यह 'ग्रिम नियम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है।

ग्रिम नियम का सम्बन्ध नौ स्पर्श ध्वनियों से है। 'क्र' से लेकर 'म' पर्यन्त समस्त ध्वनियाँ स्पर्श कहलाती है। (कादयो मावसानाः स्पर्शाः) इस जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन कहते हैं। जर्मन भाषा का यह वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है। प्रथम वर्ण परिवर्तन ईशा के कई सदी पूर्व में हुआ है तथा द्वितीय वर्ण परिवर्तन लगभग सातवीं शताब्दी में हुआ है।

3.4.3 प्रथम वर्ण परिवर्तन

प्रथम वर्ण परिवर्तन में भारोपीय मूलभाषा के घोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण और अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ क्रमशः जर्मन में घोष अल्पप्राण, अघोष अल्पप्राण, और अघोष महाप्राण में परिवर्तित हो जाती हैं। आचार्य ग्रिम का अभिमत है कि मूलभाषा के कुछ व्यञ्जन भारोपीय बोलियों में विशेषतया संस्कृत और ग्रिक में विद्यमान हैं। अतः मूलभाषा स्वरूप संस्कृत या ग्रीक से उदाहरण के लिए शब्द लिए गये हैं और परिवर्तन के लिए जर्मन श्रेणी की अंग्रजी से शब्द लिए गये हैं। संक्षेप में हम इसे इस प्रकार देख सकते हैं-

भारोपीय मूलभाषा	जर्मन
(संस्कृत, लौटिन, ग्रीक)	
घ्, ध्, भ् (घोष महाप्राण)	ग्, द्, ब् (घोष अल्पप्राण)
(ळभ्ए क्भ्ए ठीए)	(ळए क्ए ठए)
ग्, द् ब् (घोष अल्पप्राण)	क्, त, प् , (अघोष अल्पप्राण)
GH,DH,BH	(G,D,B)

प्रथम वर्ग के आदिम भाषा के घ्, ध्, भ् गाथिक भाषा में क्रमशः ग्, द, ब् में परिवर्तित हो जाते हैं।

उदाहरण-

आदिम भाषा	(संस्कृत)		गाथिक भाषा	(अंग्रेजी)
घ् (ह्)	हंसः	ग्	Goose	
	दुहिता		Daughter	
ध्	विधवा		द् Widow	
	धा		Do	

भ्	भातृ	ब Brother
	भू	BE
	भरामि	Bear

द्वितीय वर्ग में आदिम भाषा के ग्, द् ब्, गाथिक में क्रमशः क्, त्, प् हो जाते हैं।

उदाहरण -

आदिम भाषा	(संस्कृत)	गाथिक भाषा	(अंग्रेजी)
ग्	गौ	क्	Cow
	युग		yoke
द्	द्वौ	त्	Two
	दश		Ten
ब्	(संस्कृत में उदहारण नहीं मिलता) स्लेउब (ग्रीक शब्द)		प् Slip

तृतीय वर्ग में आने वाले आदिम भाषा के क्, त्, प्, गाथिक में क्रमशः ख्, थ्, फ्, में बदल जाते हैं।

आदिम भाषा	(संस्कृत)	गाथिक भाषा	(अंग्रेजी)
क्	श्वन्	ख् (ह)	Hound
शतम् = केन्टुम्			Hundred
त्	तृण	थ्	Thorn
	तद्		That
प्	पितृ	फ्	Father
	पद		Foot

3.4.4 द्वितीय वर्ण परिवर्तन

द्वितीय वर्ण परिवर्तन- प्रथम वर्णपरिवर्तन में मूल भारोपीय भाषा से जर्मन भाषा में परिवर्तन हुआ था । द्वितीय वर्ण परिवर्तन में भाषा के ही उच्च जर्मन और निम्न जर्मन ये दो भेद हो गए थे। निम्न जर्मन वर्ग में अंग्रेजी भाषा का समावेश हुआ है।

द्वितीय वर्णपरिवर्तन में निम्न जर्मन के घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब्) अघोष अल्प्राण (क्, त्, प्,) और अघोष महाप्राण (घ्,ध भ्) उच्च जर्मन में क्रमशः अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प्,) अघोष महाप्राण

(ख्, ह, थ्, फ्) या (घ्, ध्, भ्) और घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब्) में परिवर्तित हो जाते हैं। इस विषय को संक्षेप में देखें-

निम्न जर्मन (अंग्रजी)	उच्च जर्मन
ग्, द्, ब्	क्, त्, प्
क्, त्, प्,	ख् (ह), थ्, फ्
ख्, थ्, फ्	ग्, द्, ब्

प्रथम वर्ग में आने वाले गाथिक भाषा के ग्, द्, ब्, उच्च जर्मन में क्रमशः क्, त्, प् हो जाते हैं।

निम्न जर्मन (अंग्रजी)		उच्च जर्मन	
ग्	Daughter	क्	Tocher
द्	Day	त्	Tag
ब्		प्	

द्वितीय वर्ग में आने वाले गाथिक भाषा के क्, त्, प्, उच्च जर्मन में ख्, (ह्), थ्, फ् में परिवर्तित हो जाते हैं।

निम्न जर्मन (अंग्रजी)		उच्च जर्मन	
क्	Book	ख्	Buch
	Yoke		Toch
त्	Water	थ्	Wasser
प्	Deep	फ्	Tief
	Sheep		Schaf

तृतीय वर्ग में आने वाले गाथिक भाषा के ख्, थ् फ् उच्च जर्मन में क्रमशः ग्, द्, ब्, बदल जाते हैं।

उदाहरण-

निम्न जर्मन (अंग्रजी)		उच्च जर्मन	
ख्(ख् से ग् में बदलने का उदाहरण उपलब्ध नहीं है)		ग्	
थ्	Three	द्	Drei
	Brother		Bruder
	North		Norden

फ् Theif ब् Dieb

ग्रिम महोदय के द्वारा दी गयी प्रथम और द्वितीय वर्ण परिवर्तन की तालिका निम्नलिखित प्रकार की है-

मूलभाषा	आदिम जर्मनिक	उच्च जर्मन
घ्, ध्, भ् (घोष महाप्राण)	ग्, द्, ब् (घोष अल्पप्राण)	क्, त्, प्, (अघोष अल्पप्राण)
(GH,DH,BH)	(G,D,B)	(K,T,P)
ग्, द् ब् (घोष अल्पप्राण)	क्, त्, प् (अघोष अल्पप्राण)	ख्, (ह्), ध्, फ् (अघोष महाप्राण)
G,D,B	K,T,P	(KH)(H),TH,F
क्, त्, प् (अघोष अल्पप्राण)	ख्, (ह्), ध्, फ् (अघोष महाप्राण)	ग्, द् ब् (घोष अल्पप्राण)
K,T,P	(KH)(H),TH,F	G,D,B

इस परिवर्तन को निम्नलिखित त्रिकोण चक्र के द्वारा देखा जा सकता है। प्रथमतः ऊपर से नीचे की ओर तथा तीर की चाल के साथ देखते चले जायें तत्पश्चात् द्वितीय् वर्ण परिवर्तन के लिए ऊपर से नीचे की ओर जाकर तीराङ्कित मार्ग से चले जायें। इस प्रकार दोनों वर्ण परिवर्तन समझे जा सकते हैं-

ख्, थ्, फ् (घ्, ध्, भ्) महाप्राण अघोष सघोष

क् त्, प् ग्, द्, ब्

ग्रिम महोदय का यह ध्वनि नियम पर्याप्त स्पष्ट होते हुए भी दोषयुक्त है। प्रथम वर्ण परिवर्तन में भी यद्यपि अपवाद हैं परन्तु वह ठीक है। द्वितीय वर्ण परिवर्तन में एक निश्चित क्रम देखने को नहीं मिलता है। उदाहरण भी ठीक उसी रूप में नहीं मिलते हैं। इसमें अनेक अपवाद भी हैं। द्वितीय वर्ण परिवर्तन में ग्रिम को वाञ्छित सफलता नहीं मिली है। प्रथम वर्ण परिवर्तन के साथ द्वितीय वर्ण परिवर्तन का शुद्ध रूप इस प्रकार हो सकता है-

मूल भाषा	निम्न जर्मन	उच्च जर्मन
GH,DH,BH	G,D,B	X,T,X
G,D,B	K,T,P	X,Z,SS,SS,F
K,T,P	kh(H)TH,F	X,ST,X

3.4.5 ग्रासमन का ध्वनि नियम

ग्रिम महोदय के नियम के सूक्ष्म परीक्षण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें अनेक अपवाद हैं। उप अपवादों मीमांसा ग्रासमन ने की है। अतएव उस नियम को ग्रासमन नियम के नाम से पुकारा जाता है।

ग्रिम नियम के अनुसार साधारणतया क्, त्, प्, को ख् (ह्), थ्, फ्, होता है, परन्तु ग्, द्, ब्, हो जाता है। जैसे-

मूल भाषा (ग्रीक)		अंग्रेजी	
क्	kIGKHO	ग्	Go
त्	Tuplus	द्	Dumb
प्	Pithos	ब्	Body

ग्रिम के अनुसार kIGKHO के स्थान पर KHO अथवा HOहोना चाहिए, परन्तु GOहोता है।

अतएव ग्रासमन ने यह खोज की कि यदि भारोपीय मूलभाषा में शब्द या धातु के आदि और अन्त में महाप्राण ध्वनियाँ हों तो परिवर्तन होकर एक अल्पप्राण हो जाता है। जैसा कि ग्रीक केkigkho,Tuplus, औरPithosसेGo,Dump,और Body बनते हैं न किHo,Thumb,Fody ।

इसी प्रकार संस्कृत में 'हु' धातु से हुहोति, हुहुतः हुह्वति न बनकर जुहोति, जुहुतः, जुहुति रूप बनते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भारोपीय मूलभाषा की दो अवस्थायें रही होंगी। प्रथम अवस्था में तो महाप्राण रहे होंगे और दूसरी अवस्था में नहीं। यही कारण है कि अपवाद स्वरूप क्, त्, प्, के स्थान पर ग्, द्, ब्, मिलते हैं। प्राचीन मूलभाषा के समय के क्, त् प्, का पुराना रूप ख (ह्), थ्, , रहा होगा, जो कि परिवर्तित दशा में ग्, द् ब, हो गया है और ख्, थ्, फ् का पुनः ग्, द्, ब्, हो जाना नियमानुकूल है।इस प्रकार यह फलित हुआ कि ग्रासमन के उपर्युक्त संशोधन के अनुसार, भारोपीय मूलभाषा में यदि एक वर्ण या धातु आदि और अन्त दोनों में प्राणध्वनि अन्यत्र महाप्राण स्पर्श हो तो संस्कृत, ग्रीक आदि में एक अल्पप्राण हो जाता है ।

3.4.6 ह्वर्नर की ध्वनि नियम

ग्रासमन के संशोधन के पश्चात् भी ग्रिम नियम में कुछ अपवाद रह गए हैं। वर्नर ने यह खोज की कि ग्रिम नियम स्वराघात पर आधारित था। उनके अनुसार यदि भारोपीय मूलभाषा के क्, त्, प्, के पहले स्वराघात होगा तो ग्रिम नियम के अनुसार परिवर्तन होता है और यदि स्वराघात क्, त्, प्, के बाद वाले स्वर पर होगा तो परिवर्तन एक पग आगे कार्य करेगा और तब ग्रासमन के नियम की भाँति, ग्, द्, ब् हो जाता है।

जैसे-

संस्कृत	लैटिन	गाथिक	अंग्रेजी
शतम्	Centum	Hundra	Hundred
लिम्पामि	Lippus	Bileiba	Belife

सप्तन्	Septem	Sibum	Seven

ग्रिम ने यह भी कहा था कि 'स्' के लिए स्' ही मिलता है परन्तु कुछ उद्धरणों में 'स्' के स्थान पर 'र्' भी मिलता है। इसके लिए भी वर्नर ने स्वराघात को ही कारण बतलाया है। उनका कथन है कि यदि 'स्' के पूर्व स्वराघात हो तो 'स्' ही रहेगा और यदि बार में होगा तो 'स्' को 'र्' हो जाएगा।

वर्नर ने एक और महत्व पूर्ण बात बतलायी है कि यदि मूल भारोपीय के क्, त्, प् के पूर्व 'स्' संयुक्त होगा। जैसे - स्क, स्त, स्प (SK,ST,SP)तो जर्मेनिक में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। जैसे-

लैटिन	गाथिक	अंग्रेजी
Piskis	.	fisks
Aster	Stas	-

इस प्रकार विभिन्न ध्वनि -नियमों एवं संशोधनों के होने पर भी कुछ अपवाद शेष ही रह जाते हैं। जिनका मूल कारण समानता को ही मानना पड़ता है।

3.5 सारांश

इस इकाई में पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं-

1. ध्वनियों के नियमित परिवर्तन को उस भाषा का ध्वनि नियम कहते हैं।
2. ध्वनि नियम किसी भाषा विशेष का होता है।
3. एक ध्वनि नियम संसार की समस्त भाषाओं पर लागू नहीं होता है।
4. ध्वनि नियम सर्वथा अपवाद रहित नहीं होते हैं।
5. जर्मन के सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक विद्वान् ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, उसे ग्रिम नियम से पुकारा जाता है।
6. ग्रिम नियम का सम्बन्ध नौ स्पर्श ध्वनियों से है।
7. इसे जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन कहते हैं।
8. जर्मन का यह वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ है।
9. प्रथम वर्ण परिवर्तन में भारोपीय मूल भाषा के घोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण, और अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ क्रमशः जर्मन में घोष अल्पप्राण, अघोष अल्पप्राण और अघोष महाप्राण में परिवर्तित हो जाती है।
10. द्वितीय वर्ण-परिवर्तन में निम्न जर्मन के घोष अल्प्राण (ग्, द्, ब्,) अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प्)

और अघोष महाप्राण (घ्, ध्, भ्) उच्च जर्मन में क्रमशः अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प्) अघोष महाप्राण (ख् (ह्), थ् फ्) या (घ्, ध्, भ) और घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब्) में परिवर्तित हो जाते हैं।

11. ग्रिम नियम के अपवादों की मीमांसा ग्रासमन और वर्नर ने की, अतः उनके ध्वनि नियम ग्रासमन और वर्नर के नाम से प्रसिद्ध हैं।

3.6 शब्दावली

ग्रिम नियम - जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, उसे ग्रिम नियम कहते हैं।

स्पर्श ध्वनियाँ - क से लेकर म पर्यन्त सभी ध्वनियाँ स्पर्श कहलाती है।

प्रथम वर्ण परिवर्तन - प्रथम वर्ण परिवर्तन में भारोपीय मूलभाषा के घोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण और अघाष अल्पप्राण ध्वनियाँ क्रमशः जर्मन में घोष अल्पप्राण, अघोष अल्पप्राण और अघोष महाप्राण में परिवर्तित हो जाती है।

प्रथम वर्ण की आदि म भाषा के घ, ध, भ, गाथित भाषा में क्रमशः ग, द, व में परिवर्तित हो जाते हैं, इनके उदाहरण-

आदिम भाषा	(संस्कृत)		गाथिक भाषा	(अंग्रेजी)
घ् (ह्)	हंसः		ग्	Goose
	दुहिता			Daughter
ध्	विधवा		द्	Widow
	धा			Do
भ्	भातृ		ब	Brother
	भू	Be		
	भरामि	Bear		

द्वितीय वर्ण परिवर्तन

द्वितीय वर्ण परिवर्तन में निम्न जर्मन के घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब) अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प) अघोष महाप्राण (घ्, ध, भ्) उच्च जर्मन में क्रमशः अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प्,) अघोष महाप्राण (ख् (ह्), थ्, फ्,) या (घ्, ध्, भ्,) और घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब) में परिवर्तित हो जाते हैं। इस विषय को संक्षेप में देखें-

निम्न जर्मन (अंग्रजी)	उच्च जर्मन
ग्, द्, ब्	क्, त्, प्
क्, त्, प्,	ख् (ह), थ्, फ्
ख्, थ्, फ्	ग्, द्, ब्

ग्रिम महोदय के द्वारा दी गयी प्रथम और द्वितीय वर्ण परिवर्तन की स्थिति

मूलभाषा	आदिम जर्मनिक	उच्च जर्मन
घ्, ध्, भ् (घोष महाप्राण)	ग्, द्, ब् (घोष अल्पप्राण)	क्, त्, प्, (अघोष अल्पप्राण)
(GH,DH,BH)	(G,D,B)	(K,T,P)
ग्, द् ब् (घोष अल्पप्राण)	क्, त्, प् (अघोष अल्पप्राण)	ख्, (ह्), ध्, फ् (अघोष महाप्राण)
G,D,B	K,T,P	(kh)(H)TH,F
क्, त्, प् (अघोष अल्पप्राण)	ख्, (ह्), ध्, फ् (अघोष महाप्राण)	ग्, द् ब् (घोष अल्पप्राण)
K,T,P	(kh)(H)TH,F	G,D,B

इस परिवर्तन को निम्नलिखित त्रिकोण चक्र के द्वारा देखा जा सकता है। प्रथमतः ऊपर से नीचे की ओर तथा तीर की चाल के साथ देखते चले जायें तत्पश्चात् द्वितीय् वर्ण परिवर्तन के लिए ऊपर से नीचे की ओर जाकर तीराङ्कित मार्ग से चले जायें। इस प्रकार दोनों वर्ण परिवर्तन समझे जा सकते हैं-

ख्, थ्, फ् (घ्, ध्, भ्) महाप्राण अघोष सघोष

क् त्, प्   ग्, द्, ब्
अघोष अल्पप्राण   सघोष अल्पप्राण

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क-

प्रश्न 1 - ध्वनिनियम किसे कहते हैं?

उत्तर - किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में किसी विशिष्ट काल और कुछ विशिष्ट दशाओं में हुए नियमित परिवर्तन को उस भाषा का ध्वनिनियम कहते हैं।

प्रश्न 2 - क्या एक ध्वनिनियम संसार की समस्त भाषाओं पर लागू होता है?

उत्तर - एक ध्वनिनियम संसार की समस्त भाषाओं पर लागू नहीं होता है।

प्रश्न 3 - क्या ध्वनिनियम सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक होते हैं?

उत्तर - नहीं।

प्रश्न 4 - क्या ध्वनिनियम सर्वथा अपवाद रहित होते हैं?

उत्तर - ध्वनिनियम सर्वथा अपवादरहित नहीं होते हैं।

प्रश्न 5- ग्रिमनियम किसे कहते हैं?

उत्तर - जर्मन भाषा के सुप्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक ग्रिम ने जिस नियम का प्रतिपादन किया है, उस नियम को ग्रिमनियम कहते हैं

प्रश्न 6 - ग्रिमनियम का सम्बन्ध कितनी स्पर्श ध्वनियों से हैं?

उत्तर - ग्रिम नियम का सम्बन्ध नौ स्पर्श ध्वनियों से है।

प्रश्न 7 - क्या ग्रिम नियम को जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन कहते हैं?

उत्तर - हाँ।

प्रश्न 8 - जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन कितने बार हुआ?

उत्तर - जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन दो बार हुआ।

प्रश्न 9 - प्रथम वर्ण परिवर्तन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - प्रथम वर्ण में भारोपीय मूल भाषा के घोष महाप्राण, घोष अल्पप्राण और अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ क्रमशः जर्मन में घोष अल्पप्राण, अघोष अल्पप्राण और अघोष महाप्राण में परिवर्तित हो जाते हैं।

प्रश्न 10 - तृतीय वर्ग में आने वाले आदिम भाषा के क्, त्, प्, गाथित भाषा में किस रूप में परिवर्तित हो जाते हैं?

उत्तर - ख्, थ्, फ्, के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

प्रश्न 11 - द्वितीय वर्ण परिवर्तन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - द्वितीय वर्ण परिवर्तन में निम्न जर्मन के घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब) अघोष अल्पप्राण (क्, त्,प) अघोष महाप्राण (घ्, ध, भ्) उच्च जर्मन में क्रमशः अघोष अल्पप्राण (क्, त्, प्,) अघोष महाप्राण (ख् (ह्), थ्, फ्,) या (घ्, ध्, भ्,) और घोष अल्पप्राण (ग्, द्, ब) में परिवर्तित हो जाते हैं। इस विषय को संक्षेप में देखें-

निम्न जर्मन (अंग्रजी)	उच्च जर्मन
ग्, द्, ब्	क्, त्, प्
क्, त्, प्,	ख् (ह), थ्, फ्
ख्, थ्, फ्	ग्, द्, ब्

प्रश्न 12 - द्वितीय वर्ण परिवर्तन के द्वितीय वर्ग में आने वाल गाथिक भाषा के क्, त्, प्, उच्च जर्मन में किस रूप में परिवर्तन हो जाते हैं?

उत्तर - ख्, थ्, फ्, में परिवर्तित हो जाते हैं।

प्रश्न 13 - ग्रासमन नियम किसे कहते हैं?

उत्तर - ग्रिम नियम के सूक्ष्म परीक्षण से उसमें अनके अपवाद प्राप्त हुए हैं। उन अपवादों की समीक्षा ग्रासमन ने की, अतएव उस नियम को ग्रासमन नियम कहते हैं।

प्रश्न 14 '- वर्नर के ध्वनिनियम पर प्रकाश डालिए।

उत्तर - वर्नर ने यह खोज की कि ग्रिम नियम स्वराघात पर आधारति था। उनके अनुसार यदि भारोपीय मूलभाषा के क्, त्, प्, के पहले स्वराघात होगा तो ग्रिम नियम के अनुसार परिवर्तन होता है और यदि स्वराघात क्, त्, प्, के बाद वाले स्वर पर होगा तो परिवर्तन एक पग आगे कार्य करेगा

और तब ग्रासमन के नियम की भाँति, ग्, द्, ब् हो जाता है।

ख -प्रश्न 1 - जर्मन भाषा का वर्ण परिवर्तन कितने बार हुआ?

(क) दो बार (ख) तीन बार

(ग) चार बार (घ) पाँच बार

उत्तर - (क) दो बार।

प्रश्न 2 - क्या एक ध्वनि नियम संसार की सभी भाषाओं पर लागू होता है?

क) हाँ (ख) नहीं

(ग) हो सकता है (घ) हुआ है

उत्तर - (ख) नहीं।

प्रश्न 3 - ध्वनि नियम अपवाद रहित है-

क) हाँ (ख) नहीं

(ग) हो सकते हैं (घ) हुए हैं

उत्तर - (ख) नहीं

प्रश्न 4 - ग्रिम नियम का सम्बन्ध है-

क- पाँच स्पर्श ध्वनियों से

ख - सता स्पर्श ध्वनियों से

ग- नौ स्पर्श ध्वनियों से

घ - ग्यारह स्पर्श ध्वनियों से

उत्तर - (ग) नौ स्पर्श ध्वनियों से

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।

3 श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।

4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।

5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2.द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3.द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।

4.शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5.महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6.शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।

7.डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

क- 1. ध्वनि नियम किसे कहते हैं

2. ग्रिम नियम पर प्रकाश डालिए।

3. ग्रिम नियम के अन्तर्गत प्रथम वर्ण परिवर्तन की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

4. ग्रिम नियम के अन्तर्गत द्वितीय वर्ण परिवर्तन पर प्रकाश डालिए।

5. ग्रासमन के ध्वनि नियम का निरूपण कीजिए।

6. वर्नर के ध्वनि नियम पर प्रकाश डालिए।

ख - 1. ग्रिम नियम

2. प्रथम वर्ण परिवर्तन

3. द्वितीय वर्ण परिवर्तन

इकाई 4 - वाक्य - रचना

4.1 प्रस्तावना

वाक्य की रचना सार्थक शब्द समूह से होती है। वाक्य भाषा का महत्व पूर्ण अंग है। वाक्य के द्वारा सम्पूर्ण अर्थ प्रकट होता हैं। अतः भावप्रकाशन के लिये वाक्य विशेष महत्व रखता है।

प्रस्तुत इकाई में वाक्य रचना का अनुशीलन किया गया है। संस्कृत वाङ्मय में वाक्य के सम्बन्ध में सम्यक् प्रकाश डाला गया है । विद्वानों का अभिमत है कि आकांक्षा योग्यता और सन्निधि युक्त पदों का समूह वाक्य है।

इस इकाई में वाक्य-रचना के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिससे आप संस्कृत वाक्य रचना को विधिवत् समझ सकेंगे और सम्बन्धित विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के अनन्तर आप-

- संस्कृत वाक्यरचना को समझ सकेंगे।
- वाक्य से सम्बन्धित विविध विषयों की जानकारी पा सकेंगे।
- यह समझ सकेंगे कि वाक्य शब्दों का वह समूह है जिससे सम्पूर्ण अर्थ प्रकट होता है।
- वाक्य रचना की प्रकृति को जान सकेंगे।
- कौन सा पद समूह वाक्य है? इसकी विधवत् जानकारी कर सकेंगे।
- आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि से युक्त ही पद वाक्य -रचना में सक्षम है, यह जान सकेंगे।
- शब्दों का वास्तविक अर्थ वाक्य में प्रयुक्त होने पर ही प्रकट होता हे, इसकी जानकारी कर सकेंगे।
- कभी-कभी एक शब्द के प्रयोग से भी अर्थ का प्रकाशन हो जाता है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्कृत वाक्य -रचना की अनेक मौलिक विशेषताएँ हैं, इसे जान सकेंगे।

4.3 संस्कृत वाक्यरचना अर्थ एवं स्वरूप

संस्कृत वाक्य रचना का अर्थ संस्कृत में वाक्यरचना से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करना है। विभिन्न ध्वनियों के मिलने से पदों और शब्दों का निर्माण होता है। संस्कृत में सुबन्तऔर तिङन्त को

पद कहा गया है। जब तक किसी शब्द में सुबन्त और तिङन्त प्रत्यय प्रयुक्त नहीं होंगे तब तक वे पद नहीं बन सकते और जब तक वे पद नहीं बन सकते तब तक उनका वाक्य प्रयोग नहीं हो सकता। विविध शब्दों का प्रयोग करके वक्ता अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करता है। इसी को वाक्य रचना कहते हैं। सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं। शब्द वाक्य के अनुरूप यथा स्थान कुछ विकार के साथ प्रयुक्त होता है। यह आवश्यक नहीं है कि भाव को समझने के लिए अनेक पदों का प्रयोग किया ही जाये। वाक्य कभी शब्दों का समूह भी होता है और एक से ही वाक्य का आशय समझ लिया जाता है। जैसे कोई प्रश्न करता है कि त्वं विद्यालयम् अगच्छः अर्थात् क्या तुम विद्यालय गये थे इसका उतर प्राप्त हुआ आम् = हाँ। यहाँ इन वाक्यों में किं त्वं विद्यालयम् अगच्छः यह शब्द समूहों का वाक्य है। इसके उत्तर में कहा गया है- आम् = यह पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट कर रहा है।

इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि वाक्य शब्दों का ही समूह होता है। परन्तु प्रायः वाक्य शब्दों का समूह होता है। आचार्यों का यह कथन सर्वथा उचित है कि आकांक्षा ,योग्यता और आसक्ति से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों का समूह महावाक्य कहलाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वाक्य रचना भाषा का सर्वाधिक महत्व पूर्ण अंग है। वक्ता अपने हृदयस्थ भाव को वाक्य द्वारा प्रकट करता है।

4.4. वाक्यरचना

4.4.1 वाक्यरचना विमर्श

ध्वनियों के मिलने से पदों तथा शब्दों का निर्माण होता है। संस्कृत में सुबन्त और तिङन्त को पद कहा गया है। (सुप्तिङन्त पदम्) पदों के मिलने से वाक्य बनता है। वाक्य की रचना सार्थक शब्द समूह के द्वारा होती हैं। महर्षि पतञ्जलि का कथन है कि वाक्य शब्दों का वह समूह है जिससे पूर्ण अर्थ प्रकट होता है। तर्क भाषा में कहा गया है कि आकांक्षा, योग्यता और सन्निधियुक्त पदों का समूह वाक्य है। इस प्रकार वाक्य भाषा का सर्वाधिक महत्व पूर्ण अंग है। विभिन्न पदों को एक साथ बोलकर वाक्यरचना होती है। वाक्य के द्वारा वक्ता अपना अभिमत प्रकट करता है। यद्यपि शब्दों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, परन्तु वास्तविक अर्थ वाक्य में भली-भाँति प्रयुक्त होने पर जाना जाता है। शब्द और पद में भी अन्तर है। किसी सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं। परन्तु शब्द जब वाक्य के अनुरूप यथास्थान कुछ विकार के साथ प्रयुक्त होता है, तो उसे पद कहते हैं। पद और वाक्य में किसका महत्व अधिक है? इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ मनीषियों के मत में वाक्य की प्रमुख है तथा पद उसक खण्डित अंश है। इस मत को अन्विताभिधानवाद या भर्तृहरि का मत कहा गया हैं। अन्य मनीषियों के अनुसार पद का अस्तित्व ही प्रमुख है, वाक्य तो पदों का समूह है। इस

मत को अभिहितान्वयवाद कहा जाता है। आधुनिक काल के अधिकांश विद्वानों के अनुसार वाक्य ही प्रधान है और वही भाषा की महत्वपूर्ण इकाई है जिससे पूर्ण अर्थ का ज्ञान होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामान्यता वाक्य कहने से दो बातों को ध्यान आता है। प्रथम वाक्य पदों का समूह होता है तथा द्वितीय वह पूर्ण अर्थ को प्रकट करता है। परन्तु इस सम्बन्ध में विद्वान् एक मत नहीं है। वाक्य कभी शब्दों का समूह भी होता है और एक से ही वाक्य का आशय समझ लिया जाता है। जैसे कोई प्रश्न करता है कि त्वं विद्यालयम् अगच्छः अर्थात् क्या तुम विद्यालय गये थे इसका उत्तर प्राप्त हुआ आम् = हाँ। यहाँ इन वाक्यों में किं त्वं विद्यालयम् अगच्छः यह शब्द समूहों का वाक्य है। इसके उत्तर में कहा गया है- आम् = यह पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट कर रहा हैं। इसके उत्तर में कहा गया है - आम् = यह पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट कर रहा है। इस प्रकार यह पूर्णतः सत्य नहीं है कि वाक्य शब्दों का समूह होता है क्योंकि एक शब्द के द्वारा भी सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट हो जाता है। वाक्य की परिभाषा करते हुए विश्वनाथ ने लिखा है कि 'वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासक्ति - युक्तः पदोच्चय ।' अर्थात् आकांक्षा, योग्यता तथा आसक्ति से युक्त प्रयोग किये गये पदसमूह को वाक्य कहा जाता है। इन तीनों से रहित पदों के समुदाय को वाक्य नहीं कह सकते। योग्यता, आकांक्षा तथा आसत्ति के बिना कहे गये शब्द समूह वाक्य नहीं कहलाते, जैसे - गौः अश्वः, पुस्तकं, गृहम्, पुरूषः, हस्ती, बालिका, अजा आदि इसी प्रकार ''अहं विद्यालयं'' कहकर आकांक्षा करनी पड़ती है - गच्छामि। इस प्रकार आंकाक्षित पदों का प्रयोग करके वाक्य बनता है । आकांक्षा करने के साथ पदों में योग्यता बढ़ती है । एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्बद्ध करने पर रूकावट न होना योग्यता कहलाती है । ''अग्निनासिञ्चति'' यह वाक्य हो सकता था, परन्तु इसमें योग्यता गुण नहीं आता क्योंकि अग्नि जलाती है, सींचती नहीं। आकांक्षा तथा योग्यता के साथ पदों की सन्निधि आवश्यक हैं । जो वस्तुयें प्रकरण से सम्बन्धित होती है और उनके बीच में व्यवधान नहीं होता तो उसे सन्निधि या आसक्ति कहते हैं। व्यवधान भी दो तरह से होता है। वस्तु के बीच अधिक काल का होना या मध्य में अनुपयुक्त वस्तु का आ जाना, जैसे- रामः कहकर बहुत देर तक कुछ न कहकर यदि 'गच्छति' कहा जाय तो काल-व्यवधान से यह वाक्य नहीं होगा। इसी प्रकार ''बालकः विद्यालये वृक्षे फलानि'' कहकर पठति कहा जाय तो यहाँ बालकः विद्यालये और पठति के बीच में वृक्षे फलानि अनुपयुक्त रूप में आने के कारण वाक्य नहीं कहलायेगा ।

इस प्रकार आकांक्षा ,योग्यता आसक्ति से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों का समूह महावाक्य कहलाता है।

4.4.2 वाक्यों के प्रकार

1. एक तो वाक्य होते हैं जिनका हम अपनी बातों में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के वाक्य छोटे-छोटे

होते हैं और मौखिक रूप से प्रयुक्त होते हैं, जैसे अहं गच्छामि, ते पठन्तु बालकाः, रमेशः धावति आदि इन्हें बोलचाल के वाक्य कहा जाता है।

2. दूसरे प्रकार के वे वाक्य होते हैं जो लिखित रूप में होते हैं, जिनका प्रयोग शिक्षित समुदाय करता है। इन्हें लिखित वाक्य कहा जाता हैं। जैसे **- भारत में प्रियं राजते भूतले, यस्य दिव्यं यशः कोविदैर्गीयते। इत्यादि।**

सामान्यता वाक्यों के दो भाग होते हैं। प्रथम को अग्र और बाद वाले को पश्च कहते हैं। इन्हें अन्य नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। जैसे - उद्देश्य, विधेय, कर्ता, क्रिया, सत्व , आख्यात आदि। इस प्रकार के भाग प्रायः अनपढ़ लोगों की बोली में अधिक पाये जाते हैं। शिक्षित समुदाय वाक्य को एक बार में ही कह देगा अथवा उसे कभी छोटे-छोटे वाक्यों में कहेगा। व्यक्ति के द्वारा जो कहा जाता है, उसे विधेय अथवा आख्यात कहते हैं।

जिसके लिए कहा जाता है, उसे उद्देश्य या सत्व कहते हैं। जैसे रमेशः पठति इस वाक्य में रेमशः उद्देश्य तथा पठति विधेय है। दूसरे रूप में इन्हीं को कर्ता एवं क्रिया कह सकते हैं। वाक्यों में कर्ता, क्रिया, कर्म, सर्वनाम, विशेषण , क्रिया विशेषण, संयोजक एवं अव्यय शब्द पाये जाते हैं। किन्तु सभी का पाया जाना आवश्यक है। संस्कृत भाषा में वाक्य रचना करते समय कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का कोई निश्चित स्थान नहीं है। उन्हें यथा अवसार आगे पीछे भी प्रयुक्त कर दिया जाता हैं। परन्तु इसका अर्थ या भाव एक ही रहता है। जैसे - 'रमेशः पुस्तकं पठति। इस वाक्य को 'पुस्तकं रमेशः पठति' 'पठति रमेशः पुस्तकम् के रूप में भी बोला जा सकता है परन्तु उसका अर्थ या भाव यही होगा कि रमेश पुस्तक पढ़ता है। परन्तु अंग्रेजी आदि भाषाओं में शब्दों के बदल देने से अर्थ में अन्तर आ जाता है।

4.4.3 वाच्य

संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं-

1. कर्तृवाच्य,
2. कर्मवाच्य और
3. भाववाच्य ।

सकर्मक धातुओं के रूप में कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य में होते हैं और अकर्मक धातुओं के रूप में कर्तृवाच्य तथा भाववाच्य में होते हैं।

1. कर्तृवाच्य

कर्तृवाच्य वाक्य में कर्ता की प्रधानता रहती है। कर्ता में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। कर्म में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है । क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के पुरूष तथा वचन के अनुसार लगते हैं। जैसा कि कहा गया है-

प्रयोगे कर्तृवाच्यस्य कर्तरि प्रथमा भवेत् ।
द्वितीया कर्मणि तथा क्रिया कर्तृपदान्विता।।

जैसे - रमेशः ग्रामं गच्छति = रमेश गांव को जाता है ।

2. कर्मवाच्य

कर्मवाच्य के वाक्य में कर्म की प्रधानता रहती है। कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। कर्म में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है तथा क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के पुरूष तथा वचन के अनुसार होते हैं। जैसा कि कहा गया है-

प्रयोगे कर्मवाच्यस्य तृतीया स्यात्तु कर्तरि।
कर्मणि प्रथमा चैव क्रिया कर्मानुसारिणी। ।

जैसे - त्वया पाठः पठ्यते = तुम्हारे द्वारा पाठ पढा़ जाता है।

3. भाववाच्य

भाववाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है, कर्म होता नहीं है और क्रिया में सर्वदा प्रथम पुरूष का एक वचन ही रहता है।

जैसा कि काहा भी कहा गया है-

कर्माभावः सदाभावे तृतीया चैव कर्तरि।
प्रथमः पुरूषश्चैकवचनश्च क्रियापदे।।

जैसे - अस्माभिः स्थीयते = हम लोगों के द्वारा ठहरा जाता है।

व्याकरणिक रचना के दृष्टिकोण से वाक्यों के तीन प्रकार हैं-

1. साधारण वाक्य- इस वाक्य में एक उद्देश्य तथा एक विरोध होता है।
2. संयुक्त वाक्य - इस वाक्य में दो या अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं।
3. मिश्रित वाक्य - इस तरह के वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य तथा दूसरे आश्रित उपवाक्य होते हैं। आश्रित वाक्य- संज्ञा वाक्य, विशेषण उपवाक्य तथा क्रिया विशेषण उपवाक्य होते हैं।

अर्थ अनुसार वाक्य कई प्रकार के होते है, जैसे -

क- विस्मय बोधक

ख- संदेह बोधक

ग- आज्ञा बोधक

घ- प्रश्न बोधक

ङ- निषेध बोधक

च- इच्छा बोधक

4.5 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं-

1. संस्कृत वाक्य -रचना की प्रकृति मौलिक है।
2. वाक्य की संरचना सार्थक शब्दसमूह के द्वारा होती है।
3. अनेक पदों के मिलने से वाक्य का निर्माण होता है।
4. कभी-कभी एक पद भी अर्थ प्रकाशन में समर्थ हो जाता है।
5. आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि से युक्त पदसमूह की वाक्य बन सकता है।
6. वाक्य में उद्देश्य और विधेय का महत्व पूर्ण स्थान है।
7. संस्कृत में तीन वाच्य है - कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

8. सामान्यतया वाक्य तीन प्रकार के होते हैं-
साधारण वाक्य, संयुक्त वाक्य और मिश्रित वाक्य।

9. अर्थ के अनुसार वाक्य के कई भेद हो जाते हैं।

4.6 शब्दावली

वाक्य- पदों के मिलने से वाक्य निर्मित होते हैं। आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि युक्त पदों का समूह वाक्य कहलाता है।

पद- संस्कृत में सुबन्त और तिङन्त को पद कहा गया है। जब किसी शब्द या धातु से आगे कोई सुप् प्रत्यय या तिङ् प्रत्यय लगता है, तभी उसकी पद संज्ञा होती है।

शब्द -किसी सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं।

अग्र और पश्च-प्रथम पद को अग्र और बाद वाले पर को पश्च कहते हैं। इन्हें उद्देश्य और विधेय भी कहा जाता है। जैसे - रमेशः पठति। इस वाक्य में रमेशः उद्देश्य है और पठति विधेय हैं।

कर्तृवाच्य- कर्तृवाच्य वाक्य में कर्ता की प्रधानता होती है। इस वाच्य के कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के वचन और पुरूष के अनुसार प्रयुक्त होते हैं।

कर्मवाच्य-कर्मवाच्य के वाक्य में कर्म की प्रधानता होती है। इसके कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के पुरूष और वचन के अनुसार होते हैं।

भाववाच्य- भाववाच्य के कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। उसमें कर्म नहीं होता है और क्रिया में सदैव प्रथम पुरूष का एकवचन में प्रयुक्त होता है।

साधारण वाक्य- इसमें एक उद्देश्य और एक विधेय होता है।

मिश्रित वाक्य- इस प्रकार के वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य और दूसरे आश्रित उपवाक्य होते हैं।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क -1. वाक्य की संरचना होती है-
क- सार्थक शब्द समूह से
ख - निरर्थक शब्द समूह से
ग - केवल शब्द समूह से
घ- अव्यय शब्द समूह से
उत्तर - क- सार्थक शब्द समूह से।
2. आख्यात कहते हैं-
क- संज्ञा ख - सर्वनाम
ग- क्रिया घ - अव्यय
उत्तर - ग – क्रिया।
3. वाक्य में होनी चाहिये -
क - योग्यता ख - अयोग्यता
ख - विधि घ - प्रवृत्तियॉं
उत्तर - क – योग्यता।
4. वाच्य होते हैं-
क- दो ख - तीन
ग- चार घ - पाँच
उत्तर - ख - तीन।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।
2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।
3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।
4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।
5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।

4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।

5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।

6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।

7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

क-

1. संस्कृत वाक्य संरचना पर प्रकाश डालिये ।
2. वाक्य के भेदों का निरूपण कीजिये ।
3. किस पदसमूह को वाक्य कहते हैं?

ख -

1. आकांक्षा
2. योग्यता
3. सन्निधि
4. कर्तृवाच्य
5. कर्मवाच्य
6. भाववाच्य
7. मिश्रित वाक्य